निवेदन (प्रस्तावना)

इस मास का अंक आपकी सेवा में भजते हमें परम हर्ष हो रहा है। यह अंक जान बूझ कर थोड़े पन्नों में तैयार किया गया है क्योंकि इसका विषय अत्यन्त सूक्ष्म, गहन तथा गम्भीर है। यह अंक एक बार पढ़ने योग्य नहीं किन्तु हजारों बार पढ़ने योग्य है तथा जीवन भर विचारने योग्य है। हजारों प्राचीन आगमों का दोहन करके इसे तैयार किया गया है। खास कर आगे पन्ना २१ पर आगमप्रमाण में लिखे हुये आठ आगमों में दिये गये मोक्षमार्ग का तो यह प्राण है। एसेंस है। निचोड़ है। निश्चय है। उन्हें दिखलाने के लिये दर्पण है। उनके गहन मर्म को खोलने की कुञ्जी है। इस अंक को पढ़कर उन सब प्रकरणों को आप ठीक २ सरलता पूर्वक समझ सकेंगे।

निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र ही वास्तविक मोक्षमार्ग है—वह निरपेक्ष एक ही संवर निर्जरा रूप है। मोक्ष का कारण है। यह इसमें समझाया गया है। साथ में व्यवहार मोक्षमार्ग क्या है? उसकी वास्तविकता क्या है? यह भी अच्छी तरह बतलाया गया है। मोक्षमार्ग के विषय में गहन से गहन और गुप्त से गुप्त आगम के पेट को इसमें स्पष्ट खोला गया है। अपने विषय का पूर्ण तथा अजोड़ अंक है। पहली इस अङ्क की खास विशेषता यह है (जो अन्यत्र कहीं नहीं दिखलाई गई है तथा मुमुक्षु को खास ध्यान में लेने योग्य है) कि इसमें व्यवहार मोक्ष-मार्ग को भी पर्यायार्थिक नय, द्रव्यार्थिक नय तथा प्रमाण दृष्टि से दिखलाया गया है तथा निश्चय मोक्षमार्ग को भी पर्यायार्थिकनय, द्रव्यार्थिक नय तथा प्रमाण दृष्टि से दिखलाया है। उनका समन्वय (सुमेल) भी दिखलाया है। अनेकांत क्या है और किस प्रकार है यह भी दिखलाया है तथा एकांत व्यवहाराभासी, एकांत निश्चयाभासी, एकांत व्यवहारनिश्चया-भासी का स्वरूप भी दिखलाया गया है। मोक्षमार्ग के विषय में जीव कहाँ २ भूल जाते हैं—उस पर भी प्रकाश डाला गया है। मोक्षमार्ग के समझे बिना जीव कदापि अपना हित नहीं कर सकता। इसलिये हमें यह विषय लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

दूसरी इस अङ्क की विशेषता यह है कि जैन सिद्धांत की सबसे बड़ी उलझन जो व्यवहार निश्चय की है—उस पर इस अंक में पूर्ण प्रकाश डाला गया है। चारों अनुयोगों में अर्थात् सम्पूर्ण जैन शास्त्रों में व्यवहार निश्चय का प्रयोग किन किन दृष्टियों से किस किस प्रकार होता है—उसका हाद भी अच्छी तरह बिल्कुल सरल शब्दों में खोलकर दिखलाया गया है।

तीसरी विशेषता इस अंक की साध्य साधन भाव है। इस में वास्तविक, उपचरित तथा परम सत्य अर्थात् सब प्रकार के साध्य साधन भाव दिखलाये गये हैं। जो बड़ी मार्मिक वस्तु है और मुमुक्षुओं के समझने योग्य है। अन्यत्र इसका इतना स्पष्ट विवेचन नहीं है।

चौथी विशेषता इस अङ्क की यह है कि पांच व्रतों का फल मोक्ष किस प्रकार है, स्वर्ग किस प्रकार है तथा नीच गति किस प्रकार है। यह दिखलाया गया है। हम इस अङ्क की विशेषताओं को कहां तक लिखें—इसमें बहुत सी मार्मिक बातें हैं। हमारी बात में कितनी सत्यता है—इसकी साक्षी आपको स्वयं इसके पढ़ने से मिलेगी। विषय सूची भी दी गई है। शुद्धि पत्र भी दिया है। शुद्ध करके पढ़िये।

अन्त में हम आपसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि आपटीका में हमें हर प्रकार से अपना सहयोग प्रदान कीजिये ताकि हिन्दू समाज के कल्याण पत्रवत् यह पत्र भी जैन समाज की उत्कृष्ट सेवा करता रहे। आगे अङ्क समय पर ही प्रकाशित हुआ करेगा तथा प्रत्येक मास का अङ्क भिन्न २ रूप में ही निकालने का भाव है। प्रारम्भ में ही बहुत कठिनाइयां होती हैं। अभी भी बहुत सी कठिनाइयां हैं जो शनै शनै दूर होंगी। यदि समाज सहयोग दे तो जल्दी भी दूर हो सकती हैं। फिर भी हम आपकी सेवा बराबर करते रहेंगे।

जो विषय इस अंक में स्पष्ट किये गये हैं वे अब तक इतने स्पष्ट रूप में जनता के सामने नहीं आये थे—पहली बार ही हिन्दी भाषा में आगम के उन मार्मिक तथा गुप्त रहस्यों को उपस्थित किया गया है। बुद्धिमान मुमुक्षुओं को इस अंक को पढ़कर महान् प्रसन्नता होगी। यदि हो सके तो इसे किसी ज्ञानी पुरुष के सहवास में समझिये—विशेष लाभ होगा। यह हमारा मित्रवत् परामर्श है। यदि आपने माना तो उसका फल आपको स्वयं अनुभव होगा

मुमुक्षु सेवक—सरनाराम जैन
छत्ता चाब्मल, सहारनपुर, यू पी

१—५—१९५९

वार्षिक सदस्य शुल्क

(१) घटिया कागज पर रु० ६)   बढ़िया पर रु० १२)

(२) मन्दिर, लाइब्रेरी, संस्था, मुमुक्षु मण्डल, त्यागीय विद्वान, गरीबों को तथा छोटे ग्रामों के लिये घटिया कागज पर   रु० ६)
बढ़िया पर   रु० ६)

(३) भेंट रूप में (डाकादि खर्च के लिये) घटिया कागज पर   रु० ३)
बढ़िया पर रु० ६)।   डाकव्यय तथा रेल किराया सब माफ।

आप जैसी इच्छा हो–उस प्रकार के सदस्य बन सकते हैं

जिल्द–पूरे कपड़े की बहुत बढ़िया पक्की जिल्द–५० नये पैसे, चाहे एक जिल्द में एक अङ्क बनवायें या अनेक। जैसा आप लिखेंगे—तदनुसार बनाकर भेज देंगे।

नोट–(१) वी पी का नियम नहीं है रुपया पहले या पीछे मनी आर्डर से भजिये।

(२ शुल्क टीकाओं का मूल्य नहीं लिया जाता किन्तु सदस्य की योग्यतानुसार जिनवाणी माता की सहायतार्थ दान खाते में लिया जाता है जो निश्चित् जिनवाणी के प्रचार में ही खर्च होता है।

(३) स्थानीय तथा बाहर के अन्य भाइयों को पढ़ने की प्रेरणा करिये। 'आप्तटीका' का प्रचार करना तथा इसके ग्राहक बनाकर भेजना आपका परम कर्तव्य है। जिनवाणी माता के प्रचार में सहयोग दीजिये।

(४) जिस स्थान पर २५ स्थायी सदस्य होंगे, वहां हम स्वयं भी प्रवचन, शंका समाधान तथा पाठकों की कठिनाइयों को दूर करने के लिये आ सकते हैं। ठहरेंगे हम अपनी इच्छानुसार (२५ ग्राहकों से पहले नहीं)।

पहले वर्ष के १२ अङ्क

(१) प्रवराज श्री पचाध्यायी पहली पुस्तक जिसमें वस्तु निरूपण के अन्तगत द्रव्य गुण पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य का विस्तृत विवेचन है। मूल्य १) सजिल्द १।।) रु० ।

(२) प्रवराज श्री पचाध्यायी दूसरी पुस्तक जिसमें वस्तु की अनेकान्तात्मक स्थिति को दिखलाने वाले अस्ति नास्ति, नित्य अनित्य, तत् अतत्, एक-अनेक, इन चार युगलों का वर्णन है। मूल १) सजिल्द १।।)

(३) प्रवराज श्री पचाध्यायी तीसरी पुस्तक जिसमें प्रमाण नय निक्षेप का स्वरूप तथा प्रयोग पद्धति का अद्भुत विवेचन है। १) सजिल्द १।।) रु० ।

(४ ५) प्रवराज श्री पचाध्यायी चौथी पुस्तक जिसमे अनेक विषयों के साथ सम्यग्दृष्टि का तथा सामान्य (ध्रुव स्वभाव) का दिग्दर्शन कराया है। मूल्य २) सजिल्द २।।) रु०

(६) श्री द्रव्यसग्रह परमागम अध्यात्म शैली से लिखी हुई अद्भुत टीका है। मूल्य १), सजिल्द १।।।, विद्यार्थियों को ५० नये पैसे में।

(७ ८) प्रवराज श्री पचाध्यायी पांचवीं पुस्तक-सम्यग्दर्शन अक जगत् में सम्यग्दर्शन के स्वरूप को दिखलाने वाली इस से बढ़िया पुस्तक नहीं है। मूल्य २) सजिल्द २।।

(९) मोक्षमार्गप्रदीप अनेक प्राचीन आगमों का दोहन करके बनाई है। हजारों शास्त्रों के सारभूत है। मूल्य ७५ नये पैसे, सजिल्द सवा रुपया। बांटने के लिये एक दर्जन का रु० ६)।

(१०) श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार पहला भाग-सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान का भाष्य। छप रहा है। १५-९-५९ तक अवश्य प्रकाशित होगा।

(११) श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार दूसरा भाग-सम्यक्चारित्र का भाष्य। १ ७-५९ को अवश्य प्रकाशित होगा।

(१२) श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय पूरा = १-९-५९ को अवश्य प्रकाशित होगा।

नोट – (१) पहली बार पुस्तक घटिया कागज पर ही छपी हैं। अगली दो बढ़िया पर ही छपी हैं। अब दोनों प्रकार के कागजों पर छपनी हैं।
(२) डाक खर्च तथा रेल किराया सब माफ।
(३) विद्यार्थियों से तथा शादी, जलसा, पर्व आदि पर बांटने वाले पक्ष की आधी कीमत ली जाती है। अवश्य प्रचार करें।

शुभ अवसर !
(GOLDEN CHANCE)

श्रीमोक्षशास्त्र जी (तत्वार्थसूत्र)

की टीका साथ मे उस पर लिखे हुए

श्री अमृतचन्द्र आचार्यकृत

"श्रीतत्वार्थसार"

की टीका सहित-किसी भाई या बहिन को अपनी ओर

से निकलवाने का भाव हो-तो हम उस पर

टीका तैयार करके छाप सकते हैं

अथवा

अपने लड़के या लड़की की शादी में किए जाने वाले

दान से छपवाइये !

एक पथ दो काज !!

"शास्त्र दान से स्व पर कल्याण होता है"

शुद्धि पत्र (पहले ठीक करें फिर पढ़ें)

पना	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
२	२४	ज्ञ न	ज्ञान
६	४	सिद्ध	सिद्ध)
१०	५	चारित्र	चारित्र न
१२	११	का का	का
१२	१८	व्यवहार	व्यवहार–
१२	२१	(उपादेय)	उपादेय
१३	२१	को	का
१४	७	जो शुद्ध पर्याय	जो शुभ पर्याय
१४	१७	शुभ भाव	शुभ भाव)
१७	४	सहसर	सहचर
१६	अन्तिम	स्वरूप	स्वसमय
२२	"	साध	साधु
२४	१२	श्रद्धान,	श्रद्धान
२४	१२	ज्ञान	ज्ञान
३७	२	मनआवरणीय	आवरणीय
३७	३	आवरणीय	मनावरणीय
४२	१४	इनकी	इनके
४५	१८	ज्ञान करने	ज्ञान कराने
४६	३	त्रिकाल	त्रिकाली
४६	६	स्वद्रव्य को	स्वद्रव्य की
५३	१७	स्वभाव	स्वभाव में
५४	२	अधिक	अधिक (राग से पृथक्)
५४	१८	कर	कर)
५५	८	स्वमान	स्वभाव
५५	१४,१५	आश्रय नहीं होता और व्यवहार का	× डबल छपने के कारण
५५	अंतिम	से	के
५६	२४	का लक्ष	के लक्ष को
६१	७	सुनने	सुनते
६२	२०	निश्चय	निश्चय नय
६३	१३	का	का,
६३	२०	पिता	×

शुद्धि पत्र—श्रीमोक्षमार्गप्रदीप

(ग्रन्थ नं० ६)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
८	१३	दसल	अवलम्बन
९	५	की पर्याय	की अमुक पर्याय
९	६	बारहवें	दसवें
२८	३	माहाम्याम्	मोहाम्याम्
३१	१७	निश्चय का	भूमिकानुसार मोक्ष मार्ग का
३१	१९	और उसमें दोनों साथ रहते हैं	× Cancelled
४०	१२	बारहवें	दसवें
४०	१६	तत्त्व	अखण्डपर्याय तत्त्व
४०	१९	त्रिकाल स्थायी चीज	सादी अनन्त चीज
४१	१७	बीतरागाभाव	बीतरागभाव
४४	१७	मोही जीवों का अज्ञान है	× Cancelled
४६	११	नियत्व और अनियत्व	नित्यत्व और अनित्यत्व
४९	अंतिम	पर्याय	पर्याप्त
५५	अंतिम	स्वाभव	स्वभाव
६१	१	मात्र	मात्र मन भी
६४	२३	ध्यान	ख्याल
७७	१५	कम	नाश

नोट—इस शास्त्र में या अन्य किसी शास्त्र में जो हमने स्थान स्थान पर बारहवें तक व्यवहार मोक्षमार्ग लिखा है—उससे हमारा आशय दसवें तक के राग और ग्यारहवें बारहवें के औदयिक अज्ञान भाव से है क्योंकि उतना व्यवहार अंश वहां भी निश्चय से द्रव्य में है—प्रमाण श्री समयसार सूत्र १२ की टीका। शुभ भाव की अपेक्षा व्यवहार दसवें तक ही है जो हमें मान्य है।

❀ विषय-सूची ❀

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ सं०

पहले अशुद्धि ठीक

श्रीवीतरागाय नमः

मोक्षमार्गप्रदीप

अर्थात्

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" का स्पष्टीकरण

मङ्गलाचरण

परम पुज्य निज अर्थ को साध भये गुणवृन्द ।
आनन्दामृतचन्द्र को वन्दत हूँ सुखकन्द ॥

मोक्षमार्ग की नयाधीन कथन पद्धति

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा, णिच्छयदो तत्तियमइयो णिओ अप्पा ॥

सम्यक् जो दर्शन ज्ञान और चारित्र कारण मोक्ष का ।
व्यवहार से निश्चय से तो तन्मयी निज आत्मा ॥

सूत्र शब्दार्थ—व्यवहार से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष का कारण जान और निश्चय से उन तीनमय अपना आत्मा मोक्ष का कारण जान ।

भावार्थ—पहले निश्चय मोक्षमार्ग का अर्थ स्पष्ट करते हैं—अनादि काल से भेद विज्ञान के अभाव के कारण जीव अपने उपयोग को सामान्य ज्ञायक द्रव्य में न जोड़कर निमित्त में जोड़ रहा है जिसके फलस्वरूप स्वपरहेतुक मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र की पर्याय उत्पन्न हो रही है। जब जीव भेद विज्ञान की प्राप्तिपूर्वक पर में न जुड़कर स्वतत्त्व (ध्रुव स्वभाव) का आश्रय करता है तो वह द्रव्य स्वयं शुद्ध रूप से परिणमन कर जाता है। तब सांसिद्ध स्वहेतुक पर्याय उत्पन्न

होती है। उसमें निमित्त का दखल नहीं है। पर्यायार्थिक नय से उस शुद्ध पर्याय को सम्यग्दर्शन कहते हैं और द्रव्यार्थिक नय से उस पर्याय से तन्मय जो वह अपना आत्मद्रव्य है—शुद्ध पर्याय परिणत उस द्रव्य को ही सम्यग् ज्ञान कहते हैं जैसे अभेद नय से मुनि को ही मोक्षमार्ग कहते हैं। चौथे मे वह द्रव्य श्रद्धा ज्ञान और स्वरूपाचरण के आंशिक परिणमन सहित होता है, फिर भूमिकानुसार बढ़ते बढ़ते सातवें में बुद्धि पूर्वक राग का अभाव करता हुआ उन तीनों पर्यायों से तन्मय होता हुआ परिणमता है। अबुद्धिपूर्वक राग को यदि न हुवे के समान गौण कर दिया जाय तो उन तीन शुद्ध पर्यायों से तन्मय यह आत्मद्रव्य निश्चयमोक्षमार्ग रूप है और बारहवें में साक्षात् निश्चय मोक्षमार्ग रूप है। पर्यायार्थिक नय से श्रद्धा ज्ञान चारित्र गुणों की तीन शुद्ध पर्यायें या उन तीन शुद्ध पर्यायों की एकता मोक्षमार्ग है। द्रव्यार्थिकनय से उन तीन शुद्ध पर्यायों में रहने वाला आत्मद्रव्य मोक्षमार्ग रूप है और प्रमाण से उन पर्यायों से परिणत द्रव्य दोनों मिलकर मोक्षमार्गरूप है यानकथन्। यह मोक्षमार्ग तेरहवें में प्रगट होने वाली मोक्षपर्याय का वास्तविक कारण है। इतना अर्थ तो नीचे की इस पंक्ति का है कि "निश्चय से उन तीनमय आत्मा आत्मा मोक्ष का कारण जान।"

अब व्यवहार मोक्षमार्ग का अर्थ लिखते हैं—जहां तक जीव ज्ञायक को आश्रय करके शुद्ध परिणमन न करे वहां तक तो व्यवहार मोक्षमार्ग भी प्रारम्भ नहीं होता अर्थात् चौथे गुणस्थान से पहले (व्यवहार) मोक्षमार्ग बिलकुल नहीं है। चौथे वाले का ज्ञान जो बुद्धि पूर्वक राग सहित भी तत्वों के श्रद्धान में या देव शास्त्र गुरु के श्रद्धान में या स्व पर के श्रद्धान में भेद रूप से संज्ञा संख्या लक्षणादि के विचार सहित वर्तता है। इन के उस राग सहित परिणमन का विषय ९ तत्वों का श्रद्धान होने से उस राग सहित ज्ञान को ही व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा उसका ज्ञान जो आचारादि चार अनुयोगों के स्वाध्याय विचार जानता पदार्थ निर्णय रूप से बुद्धि पूर्वक राग सहित वर्तता है तो उस ज्ञान के परिणमन का विषय चार

प्रयोग होने से राग सहित उस ज्ञान परिणमन को ही व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहते हैं तथा पांचवें या छठें में उस सम्यग्दृष्टि का उपयोग जो बुद्धिपूर्वक छ काय के जीवों की रक्षा मे वतता है तो राग सहित ज्ञान के उस परिणमन का विषय छ काय के जीवों की रक्षा होने से उसे व्यवहार से सम्यकचारित्र कहते हैं। मुख्यतया तो छठे मे वतते हुये ज्ञान के पराश्रित शुभ परिणमन को व्यवहार रत्नत्रय या व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं, गौणतया श्रेणी में वतते हुये राग सहित ज्ञान के परिणमन अंश को भी कह सकते हैं। इस प्रकार दसवें तक व्यवहार रत्नत्रय का अस्तित्व है। [बारहवें में जितना ज्ञान अप्रगट है उतना व्यवहार अंश द्रव्य मे मौजूद है।] यह व्यवहार मोक्षमार्ग-तेरहवें में प्रगट होने वाली मोक्षपर्याय का व्यवहार से कारण है अर्थात् उपचरित कारण है—असत्यार्थ, अभूतार्थ, आरोपित कारण है। ऐसा सूत्र की इस पंक्ति का अर्थ है कि 'व्यवहार से सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को मोक्ष का कारण जान" [व्यवहार कहते ही उसको हैं जो सच्चा न हो, कि तु झूठा हो।]

अब इनका समन्वय (सुमेल) दिखलाते हैं। चौथे से पहले न व्यवहार मोक्षमार्ग है, न निश्चय मोक्षमार्ग है। चौथे में एक समय में दोनों की उत्पत्ति होती है और फिर बारहवें तक दोनों साथ साथ रहते हैं। अखण्ड पर्याय की अपेक्षा इसको साधन, उपाय, मोक्ष मार्ग-पुरुष की सिद्धि का उपाय कहते हैं। तेरहवें की शुद्ध पर्याय प्रगट होने पर साध्य दशा प्रगट हो जाती है और दोनों मोक्षमार्गों का लोप हो जाता है। इस मार्ग में शुद्ध अंश निश्चय साधन है, व्यवहार अंश उपचरित (आरोपित) साधन है। क्योंकि चौथे से बारहवें तक ये दोनों अंश साथ साथ रहते हैं इसलिये दोनों का जानना परम आवश्यक है। यही अनेकान्त मोक्षमार्ग है। किसी एक अंश को स्वीकार करना और दूसरे अंश के अस्तित्व से ही इनकार करना-ये एकान्त है। जो केवल

निश्चय नय के मानने वाला है वह एकान्त निश्चयाभासी है। जो केवल व्यवहार नय के मानने वाला है वह केवल एकान्त व्यवहाराभासी है। यह मोक्षमार्ग की पूर्ण कथा है।

एक और ध्यान रहे कि यद्यपि मोक्षमार्ग पर्यायरूप है पर द्रव्य जिस समय जिस पर्याय में वर्तता है, उस समय उससे तन्मय होकर रहता है। अतः गुरुओं ने उन पर्यायों से तन्मय द्रव्य को ही मोक्षमार्ग कहा है जैसे निश्चय से उन तीन शुद्ध पर्यायों में परिणत द्रव्य अर्थात् सातवें से बारहवें का उत्तम मुनि (शुद्धोपयोगी मुनि) ही मोक्षमार्ग है। उसी प्रकार छठे गुणस्थान में (शुद्ध अंश के सहचर वर्तते हुये) तत्वार्थश्रद्धान ज्ञान उपेक्षा रूप पराश्रित पर्यायों से परिणत द्रव्य-व्यवहारी मुनि कहा गया है। और उस व्यवहारी मुनि को (शुभोपयोगी मुनि को) व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। यह अर्थ भी ऊपर के मूल सूत्र के पेट में गर्भित है।

[एक बात यह भी समझने की है कि वास्तव में तो प्रत्येक गुणस्थान का शुद्ध अंश अपने से अगले शुद्धअंश का कारण है पर उपचार से शुभ भावों को भी सहचर शुद्ध भावों का या अविनाभावी उत्तरचर शुद्ध भावों का साधन कहा जाता है जैसे छठे के पराश्रित श्रद्धान ज्ञान चारित्र छठे के स्वाश्रित श्रद्धान-ज्ञान चारित्र के भी उपचरित साधन कहने की आगम पद्धति है तथा छठे के पराश्रित श्रद्धान ज्ञान चारित्र सातवें के स्वाश्रित श्रद्धान ज्ञान चारित्र के कारण हैं—ऐसा भी कहने की आगम पद्धति है। यह उपचरित साध्य-साधन है।]

नोट—श्री समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय तत्वार्थसार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक की रचना उपर्युक्त नय पद्धति अनुसार हुई है। इसमें सत्यार्थ निरूपण सो निश्चय है। असत्यार्थ निरूपण सो व्यवहार है। मोक्षमार्ग कहीं दो नहीं हैं किन्तु उसके निरूपण की पद्धति दो प्रकार है। सत्यार्थ निरूपण सो निश्चय।

है सद्भूत या पुद्गल को व्यवहार। मोक्षमार्ग तो उतना ही है जितना शुद्ध अंश है तथा "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" में उतने ही अंश का ग्रहण है। इस पद्धति का सविस्तार निरूपण हमने अपनी श्री पुरुषार्थसिद्धयुपाय टीका में खूब किया है।

अथवा

उपर्युक्त सूत्र का अर्थ एक और प्रकार से भी हो सकता है। व्यवहार का अर्थ पर्यायार्थिक नय भी होता है तथा निश्चय का अर्थ द्रव्यार्थिक नय भी होता है। उस दशा में यह अर्थ होगा—

सूत्रार्थ—व्यवहार से अर्थात् पर्यायार्थिक नय से (श्रद्धा गुण की) सम्यग्दर्शन पर्याय, (ज्ञान गुण की) सम्यग्ज्ञान पर्याय और (चारित्र गुण की) सम्यक् चारित्र पर्याय ये ३ पर्यायें या इन तीन पर्यायों की एकता को मोक्ष का कारण जान और निश्चय से अर्थात् द्रव्यार्थिक नय से उन तीन पर्यायों से तन्मय जो अपना आत्मद्रव्य है उसे ही मोक्ष का कारण जान।

भावार्थ—पहले ऊपर की पंक्ति का अर्थ करते हैं (१) श्रद्धा गुण की अनादि से मिथ्यादर्शन पर्याय चली आ रही है। यदि जीव अपने पुरुषार्थ द्वारा निमित्त का आश्रय छोड़कर अपने ज्ञायक द्रव्य (ध्रुव स्वभाव) का आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हो जाती है जिस का लक्षण आत्म श्रद्धान या तत्त्वार्थश्रद्धान है। इस पर्याय में राग अंश नहीं होता,यह शुद्ध रूप एक प्रकार की ही होती है जो पर्यायार्थिक नय से मोक्ष का कारण कही जाता है। (२) अनादि का ज्ञान पर में प्रवृत्त हो रहा है। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर ज्ञान-सम्यग्ज्ञान हो जाता है। वह ज्ञान जो अनादि का मिथ्याचारित्र की प्रवृत्ति में कारण था, फिर वह सम्यक्चारित्र की प्रवृत्ति में कारण बनता है। वीतराग रूप वह सम्यग्ज्ञान पर्याय पर्यायार्थिक नय से मोक्ष का कारण कही जाती है। (३) चारित्र गुण का परिणमन तीन प्रकार का हुआ करता है। एक

अशुभ रूप, एक शुभ रूप, एक शुद्ध रूप। अनादि काल का जो शुभा शुभ रूप चारित्र का परिणमन हो रहा है—उसका तो यहां ग्रहण ही नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर चारित्र गुण की पर्याय की सम्यक् संज्ञा हो जाती है। अत उसका जो मोहक्षोभरहित शुद्ध आत्म स्थिरता रूप परिणमन है। वह पर्याय निश्चय से मोक्षमार्ग है अर्थात् मोक्ष का कारण है [और व्यवहार से इस गुण की पर्याय का जो अशुभ से निवृत्त होकर १३ प्रकार के चारित्र का शुभ प्रवृत्ति रूप परिणमन है वह चरण परिणाम व्यवहार से मोक्ष का कारण है (अर्थात् उस पर व्यवहार से मोक्ष मार्ग का आरोप कर देते हैं, पर है नहीं।)] यों तो उपयुक्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप शुद्ध पर्यायों का प्रारम्भ चौथे से हो जाता है पर जब तक साथ में राग रहता है तब तक इनमें भेद रहता है। अभेद नहीं हो पाता। सातवें में बुद्धिपूर्वक राग का अभाव हो जाता है अत इस अपेक्षा तो यहां अभेद हो जाता है। अभेद को ही एकता कहते हैं। और अबुद्धिपूर्वक राग का बारहवें में सर्वथा क्षय होकर पानकवत् तीनों एक हो जाते हैं। यह एकता ही "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" है और फिर बारहवें के अन्त होते ही मोक्ष हो जाता है। तेरहवां मोक्षदशा रूप ही है। [एक बात सिद्धान्त दृष्टि से यह भी समझने की है कि बुद्धि पूर्वक राग का अस्तित्व छठे तक है और छठे तक ही नया आयु कर्म का बंध प्रारम्भ होता है। अत छठे तक का रत्नत्रय तो बुद्धिपूर्वक राग की सहचरता के कारण परम्परा मोक्ष का कारण कहा जाता है और साक्षात् स्वर्गबंध का कारण कहा जाता है। और सातवें से नयी आयु बंध का प्रारम्भ नहीं होता और बिना आयु बंध के अगला अवतार हो नहीं सकता। इसलिये भी सातवें से रत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का ही कारण कहा जाता है।]

इस प्रकार आचार्य महाराज कहते हैं यदि पर्यायार्थिक नय से देखा जाय अर्थात् पर्याय भेद करके पर्यायों को

दृष्टि से देखा जाय तो ये तीन पर्यायें या इन तीन पर्यायों की एकता मोक्ष का कारण है। यहाँ तक तो पूर्व के इन शब्दों का अर्थ हुआ कि "व्यवहार से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र मोक्ष का कारण जान।" अब नीचे की पंक्ति का अर्थ लिखते हैं कि "निश्चय से उनसे तन्मय अपना आत्मा मोक्ष का कारण जान।" यह नियम है कि द्रव्य अपनी पर्यायों से तन्मय होकर वर्ता करता है। अतः यदि द्रव्यार्थिक नय से देखा जाय तो जो ज्ञायक द्रव्य स्वयं इन तीन शुद्ध पर्यायों से तन्मय होकर वर्त रहा है सो वह एक अद्वितीय ज्ञाता जीव द्रव्य ही स्वयं मोक्ष का कारण है [यह स्वयं सिद्ध है कि प्रमाण दृष्टि से उन पर्यायोंयुक्त द्रव्य अर्थात् दोनों मिलकर मोक्ष का कारण है क्योंकि जगत् का प्रत्येक सत् भेदाभेदात्मक है।] यहाँ तक नीचे की पंक्ति का अर्थ पूरा हुआ। अब यदि यहाँ कोई शंका करे कि द्रव्य को क्यों कारण कहते हो तो उसका उत्तर यह है कि ये पर्यायें इसी द्रव्य से तो उत्पन्न की हैं। उस द्रव्य को छोड़कर और किसी द्रव्य में तो नहीं रहती हैं। उनकी स्वरूप प्रगटता का बीज तो स्वयं यह द्रव्य ही है (श्री द्रव्यसंग्रह सूत्र ४०)। इसलिये वास्तव में तो आत्मा ही स्वयं उपाय (साधन) और उपेय (साध्य) भाव से परिणमन करता है। आत्मा स्वयं ही अपनी शुद्धता का कारण है। पर वस्तु का राग (बिल्कुल) नहीं, यही इस लेख का मर्म है। "निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का सम्बन्ध नहीं है, कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिये सामग्री (बाह्य साधन) ढूंढने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतन्त्र होते हैं।"

नोट—श्री नियमसार तथा श्री द्रव्यसंग्रह की रचना उपर्युक्त दूसरी अर्थ पद्धति अनुसार हुई है। इस पद्धति का सविस्तार स्पष्टीकरण हम अपनी श्री द्रव्यसंग्रह परमागम टीका सूत्र ३६ से ४६ तक कर चुके हैं। उसे एक बार फिर पढ़िये।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—निश्चय मोक्षमार्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चय नय का विषय शुद्ध द्रव्य अर्थात् शुद्ध पर्याय ... द्रव्य है, अर्थात् अकेले द्रव्य की (पर निमित्त रहित) शुद्ध पर्याय ... है, जैसे कि, निर्विकल्प शुद्धपर्यायपरिणत मुनि निश्चय से मोक्ष मार्ग है। जिस नय में साध्य और साधन अभिन्न (अर्थात् एक प्रकार के) हों वह यहां निश्चय नय है, क्योंकि यहां (मोक्ष रूप) साध्य और (मोक्षमार्ग रूप) साधन एक प्रकार के हैं अर्थात् शुद्ध आत्मरूप (शुद्ध पर्यायरूप) हैं। तेरहवें गुणस्थान की पर्याय पूर्ण शुद्ध है वह साध्य है अर्थात् मोक्ष है और चौथे से बारहवें तक का जो शुद्ध अंश है वह साधन है अर्थात् मोक्षमार्ग है। दोनों शुद्ध रूप हैं। एक जाति के हैं। अकेले आत्मा के परिणमन हैं। निमित्त का दखल नहीं है। इसलिये इस को अभिन्न साध्य साधन अर्थात् एक जाति के साध्य साधन कहते हैं। यह निश्चय मोक्षमार्ग है। बारहवें की शुद्धि को साक्षात् मोक्षमार्ग कहते हैं सातवें से बारहवें की शुद्धि में अबुद्धिपूर्वक राग को गौण करके भी साक्षात् मोक्षमार्ग कहने की पद्धति है और चौथे से छट्टे का शुद्ध अंश परम्परा मोक्षमार्ग है। यह निश्चय मोक्षमार्ग का कथन है।

प्रश्न २—व्यवहार मोक्षमार्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस पर्याय में स्व तथा पर कारण होते हैं अर्थात् उपादान कारण तथा निमित्त कारण होते हैं वे पर्यायें स्वपरहेतुक पर्यायें हैं, जैसे कि छट्टे गुणस्थान में (द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक अवलम्बन सहित) हुये तत्त्वार्थ श्रद्धान (नवपदार्थगत श्रद्धान), तत्त्वार्थज्ञान (नव पदार्थगत ज्ञान) और पंचमहाव्रतादिरूप चारित्र यह स...

स्वपरहेतुक पर्यायें हैं। ये यहां व्यवहार नय के विषयभूत हैं। जिस नय मे साध्य और साधन भिन्न हों (भिन्न प्ररूपित किए जावें) वह यहां व्यवहार नय है, क्योंकि (मोक्षरूप) साध्य स्वहेतुक (अकेले उपादान से सिद्ध पर्याय हैं और (तत्वार्थश्रद्धानादिमय मोक्षमार्गरूप) साधन स्वपर-हेतुक (उपादान निमित्त दोनों से सिद्ध) पर्याय है। तेरहवें गुणस्थान की पर्याय मात्र शुद्ध रूप है वह साध्य अर्थात् मोक्ष है और चौथे से बारहवें तक का जो शुभ अंश है वह साधन अर्थात् व्यवहार मोक्षमार्ग है। साध्य शुद्ध रूप है। साधन अशुद्ध रूप है। दोनों एक जाति के नहीं हैं इसलिये इसको भिन्न साध्य साधन अर्थात् भिन्न जाति के साध्य साधन कहते हैं। यह व्यवहार मोक्षमार्ग है। उसको परम्परा मोक्षमार्ग, उपचार मोक्षमार्ग, अभूतार्थ, असत्यार्थ, आरोपित मोक्षमार्ग भी कहते हैं। छठे गुणस्थान में (शुद्ध अंश के सहचर वर्तते हुए) शुभ अंश को मुख्यतया कहते हैं। पांचवें को गौणतया कहते हैं क्योंकि एक देश चारित्र है और चौथे का श्रद्धान ज्ञान तो वह सकते हैं पर चारित्र न होने से रत्नत्रय नहीं कहते। गौण रूप से श्रेणी में वर्तता हुआ शुभ भाव भी व्यवहार मोक्षमार्ग है। इसमें ज्ञानी जीव के शुभ भाव को मोक्षमार्ग कहने की पद्धति है। यह व्यवहार मोक्ष मार्ग की कथा है [पर वास्तव में यह मोक्षमार्ग नहीं है]।

प्रश्न – ३ निश्चय व्यवहार (मोक्षमार्ग) के अविरोधपने का उदाहरण बताओ?

उत्तर—छठे गुणस्थान में मुनियोग्य शुद्ध परिणति निरन्तर होना तथा महाव्रतादि सम्बन्धी शुभ भाव यथायोग्य रूप से होना वह निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग के अविरोध का (सुमेल का) उदाहरण है। पांचवें गुणस्थान में उस गुणस्थान के योग्य शुद्ध परिणति निरन्तर होना तथा १२ अणुव्रत या ग्यारह प्रतिमा सम्बन्धी शुभ भाव भी यथा योग्य रूप से होना यह भी गौणरूप से निश्चय-व्यवहार

मोक्षमार्ग के अविरोध का उदाहरण है [चौथे गुणस्थान में ज्ञायक आश्रित शुद्ध परिणति (निश्चय सम्यग्दर्शन) होना और उसके साथ सच्चे देव शास्त्र गुरु का भी तत्त्वों के यथार्थ श्रद्धान का विकल्प का होना—यह भी व्यवहार निश्चय के मेल का उदाहरण है पर चारित्र होने से मोक्षमार्ग का उदाहरण नहीं बनता।]

प्रश्न—४ 'व्यवहार (मोक्षमार्ग) प्रतिपादक है—निश्चय (मोक्षमार्ग) प्रतिपाद्य है' इसका क्या भाव है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग वास्तव में शुद्धभाव रूप है जो चौथे से बारहवें तक एक प्रकार का है। अब हमें निश्चय को सम्यग्दर्शन पर्याय की शुद्धि बतलानी हो तो कैसे कहें ? उसका तरीका गुरुओं ने ऐसा रख दिया है कि जिस शुद्धि के साथ देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान या ९ तत्त्वों का श्रद्धान या स्वपर का श्रद्धान रूप इस जाति का ही परलक्षी भेद को विषय करने वाला राग हो—वह शुद्धि सम्यग्दर्शन है। इतना लम्बा कथन न करके केवल यह कह देते हैं कि देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान या तत्त्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। इस प्रकार मुख से लक्षण व्यवहार का बोलते हैं किन्तु उन शब्दों के द्वारा प्रगट निश्चय को करते हैं। इसी प्रकार जब हमें ज्ञायक के आश्रय रूप शुद्ध सम्यग्ज्ञान कहना हो तो यह कहते हैं कि जिस ज्ञान के साथ ज्ञान की प्रवृत्ति रूप आचारादि चार अनुयोगों में भेद रूप से राग सहित प्रवर्त रहा हो वह सम्यग्ज्ञान है, इतना लम्बा न कहकर चार अनुयोगों का यथार्थ जानना ही सम्यग्ज्ञान है ऐसा थोड़े में कह देते हैं। इसी प्रकार जब हमें छठे गुणस्थान की आत्म स्थिरता रूप निश्चय चारित्र बताना हो तो ऐसा कहते हैं कि जिस शुद्धि के साथ २८ मूल गुण या १३ प्रकार का चारित्र प्रवर्त रहा हो, वह सम्यक्चारित्र है। इतना लम्बा-लम्बा

न कहकर १३ प्रकार के प्रवृत्ति रूप चारित्र को ही सम्यक्चारित्र कह देते हैं। अथवा पांचवें गुणस्थान की चारित्र शुद्धि बतलानी हो तो ऐसा कहते हैं कि जिसके साथ १२ व्रत या अमुक-अमुक प्रतिमा रूप प्रवृत्ति वर्त रही हो। इस प्रकार व्यवहार द्वारा प्रतिपादन करने की प्रणाली होती है किन्तु उन शब्दों का प्रतिपाद्य अर्थ मुमुक्षु को उसकी सहचर श्रद्धा ज्ञान-चारित्र की शुद्ध पर्यायें लेनी चाहियें, न कि राग अंश। वे शुद्ध पर्यायें ही "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" रूप हैं। इसलिये मुक्ति मार्ग में वास्तव में आत्मा का श्रद्धान ज्ञान-चारित्र है, ७ तत्वों या देवशास्त्र गुरु के श्रद्धान, आचारादि के ज्ञान या षट्काय की रक्षा रूप चारित्र से कुछ प्रयोजन नहीं है, वे तो अभव्य के भी होते हैं। द्रव्य लिंगी के भी होते हैं तथा ऊपर की सर्वथा निर्विकल्प भूमिकाओं में जाकर वे छूट भी जाते हैं। इसलिये वह निर्दोष लक्षण नहीं है। केवल नीचे की भूमिकाओं का ज्ञान कराने के लिये गुरुओं का विधान है। आत्मा का श्रद्धान ज्ञान स्थिरता वास्तविक लक्षण है जो चौथे से सिद्ध तक निर्दोष है।

प्र०—५ व्यवहार (मोक्षमार्ग) प्रतिषेध्य है निश्चय (मोक्षमार्ग) प्रतिषेधक है" इसका क्या भाव है ?

उत्तर—ऊपर के प्रश्न के उत्तर में यह बताया है कि प्रतिपादन व्यवहार द्वारा किया जाता है। इसलिये कोई उसे ही वास्तव में सत्यार्थ न समझ ले, उसके लिये गुरुओं ने यह दूसरा नियम रक्खा है कि व्यवहार द्वारा किया गया प्रतिपादन निश्चय द्वारा असत्यार्थ बतला कर निषेध कर दिया जाता है जैसे व्यवहार कहता है कि देव शास्त्र गुरु या ६ तत्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, निश्चय उसका निषेध करता हुआ कहता है कि यह लक्षण अभूतार्थ है। आत्मश्रद्धान वास्तव में सम्यग्दर्शन है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान के विषय में

व्यवहार कहता है कि प्राचारादि का (४ अनुयोगों का ज्ञान) सम्यग्ज्ञान है निश्चय उसका निषेध करता हुआ कहता है कि यह लक्षण अभूतार्थ है। आत्मज्ञान वास्तव में सम्यग्ज्ञान है। इसी प्रकार चारित्र के विषय में व्यवहार कहता है कि छटकाय के जीवों की रक्षा चारित्र है—निश्चय उसका निषेध करता हुआ कहता है कि यह लक्षण अभूतार्थ है, आत्मस्थिरता वास्तव में सम्यक्-चारित्र है। इस प्रकार व्यवहार निश्चय द्वारा प्रतिषेध्य है। विशेष स्पष्टीकरण के लिये देखिये श्रीसमयसार जी सूत्र २७६ २७७ टीका सहित, परम सतोष होगा तथा क्रियात्मक रूप में (Practically) यह व्यवहार-निश्चय द्वारा कैसे निषेध किया जाता है इसके लिये आगे व्यवहार नय के पक्ष के सूक्ष्म आशय का का स्वरूप और उसे दूर करने का उपाय" नामा लेख पढ़िये। बड़ी सूक्ष्म भूल रह जाती है।

प्रश्न ६—'व्यवहार (मोक्षमार्ग) अनुसरण करने योग्य नहीं है' इस का क्या भाव है?

उत्तर—व्यवहार—देव शास्त्र गुरु के श्रद्धान को या ६ तत्वों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहता है। व्यवहार—आचारादि के ज्ञान को ज्ञान कहता है। व्यवहार षट्काय की रक्षा को चारित्र कहता है। यह व्यवहार इन ही शब्दों में ज्यों का त्यों उपादेय नहीं है क्योंकि यह तो घी के घड़ेवत् सयोगी राग का लक्षण है, शुद्ध भाव का नहीं। अनुसरण करने योग्य अर्थात् (उपादेय) तो आत्मा का श्रद्धान ज्ञान चारित्र है जो शुद्ध भाव रूप है, मोक्षमार्ग है और साक्षात् सवर निर्जरा मोक्ष का कारण है। इसलिये व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है, यह कहा जाता है।

प्रश्न ७—'व्यवहार (मोक्षमार्ग) स्थापन करने योग्य है।" इसका क्या भाव है?

उत्तर—ऊपर के इन शब्दों को सुनकर कि व्यवहार मोक्षमार्ग अनुसरण करने योग्य नहीं है कोई यह कहे कि ऐसे अभूतार्थ मोक्षमार्ग के मानने से ही क्या लाभ, उसे आगम से उड़ा देना चाहिये ? तो उस के लिये आचार्य कहते हैं, कि नहीं वह उड़ाने योग्य नहीं है क्योंकि एक तो वह निश्चय का सहचर है। सातवें की अपेक्षा छठे में पूर्वचर भी है। जब दोनों साथ-साथ हैं तो एक को उड़ाया कसे जा सकता है, एकान्त हो जायेगा। दूसरे निश्चय-शब्द और राग से पार है। उसका सीधा विवेचन नहीं हो सकता, यह व्यवहार द्वारा ही बतलाया जाता है जसे कि मलेच्छ को मलेच्छ भाषा द्वारा हो समझाया जाता है पर जसे ब्राह्मण का स्वयं मलेच्छ होने योग्य नहीं है इस प्रकार व्यवहार अंगीकार करने योग्य नहीं है तो भी वह स्थापन करने योग्य अवश्य है अर्थात् उसकी भी सत्ता है ऐसा स्वीकार अवश्य करना चाहिए। वह उपादेय नहीं है तो भी ज्ञानियों का ज्ञेय जरूर है।

प्रश्न ८—मोक्षमार्ग में साध्य साधन का क्या भाव है ?

उत्तर—(१) इसके कई अर्थ होते हैं एक बात तो यह कि तेरहवें गुण स्थान की पर्याय (पर्याय परिणत द्रव्य) साध्य है और चौथे से बारहवें का शुद्ध अंश साधन है। यह वास्तविक साध्य साधन है। आत्मा स्वयं साध्य साधन भाव से परिणमन करता है।

(२) चौथे से बारहवें तक के प्रत्येक गुणस्थान को शुद्ध अंश अपने से अगले गुणस्थान के शुद्ध अंश का साधन है जसे छठे का शुद्ध अंश सातवें के शुद्ध अंश का साधन है। यह भी वास्तविक साध्य साधन है।

(३) तेरहवें गुणस्थान की पर्याय (पर्याय परिणत द्रव्य) साध्य और चौथे से बारहवें का शुभ अंश (मुख्यतया छठे का) व्यवहार साधन है। यह उपचरित साध्य साधन है।

(४) चौथे से बारहवें का शुभ अंश सहचर शुद्ध अंश का साधन है जैसे छठे में वर्तते तत्त्वार्थश्रद्धान, तत्त्वार्थज्ञान तथा महाव्रतादिक शुभ भाव छठे में वर्तते आत्मश्रद्धान-ज्ञान स्थिरता रूप शुद्ध भावों के साधन हैं, यह भी उपचरित साध्य साधन है।

(५) एक साध्य साधन यह भी है कि सातवें से बारहवें की जो शुद्ध पर्याय है जिसको निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं वह तो साध्य भाव है और छठे का (शुद्ध अंश की सहचर) जो शुद्ध पर्याय है वह साधन भाव है। जैसे जिस पाषाण में सुवर्ण हो उसे स्वर्ण पाषाण कहा जाता है। जिस प्रकार व्यवहार नय से सुवर्णपाषाण सुवर्ण का साधन है, उसी प्रकार व्यवहार नय से व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग का साधन है, अर्थात् व्यवहार नय से भावलिंगी मुनि को सविकल्प दशा में वर्तते हुये तत्त्वार्थश्रद्धान, तत्त्वार्थज्ञान और महाव्रतादिकरूप चारित्र निर्विकल्प दशा में वर्तते हुये शुद्धात्मश्रद्धान ज्ञानानुष्ठान के साधन हैं। यह अभूतार्थ (उपचरित) साध्य साधन हैं।

प्रश्न ६—निश्चय मोक्षमार्ग (सातवें गुणस्थान का) तो निर्विकल्प है और उस समय सविकल्प मोक्षमार्ग (छठे गुणस्थान का शुभ भाव है नहीं तो फिर वह सविकल्प मोक्षमार्ग साधक कैसे हो जाता है ?

उत्तर भूतनैगम नय की अपेक्षा से परम्परा से साधक होता है अर्थात् पहले वह था किन्तु वर्तमान में नहीं है तथापि भूतनैगमनय से वह वर्तमान में है ऐसा संकल्प करके उसे साधक कहा है (श्री परमात्म प्रकाश पृष्ठ १४२ संस्कृत टीका)।

परम सत्य बात (खास)

(१) शुद्ध निश्चय नय से शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग (निश्चय) मोक्षमार्ग का कारण नित्य आनन्द स्वभावरूप निजशुद्धात्मा (प्रभुत्वस्वभाव)

हो है (श्री परमात्मप्रकाश पृष्ट १४५)। उस स्वभाव रुप कारण में से काय रूप मोक्षमार्ग प्रगटता है [सारी श्री नियमसार टीका इसी आधार पर लिखी गई है। कारण काय की ऐसी अलौकिक संधि अन्य किसी ग्रंथ में नहीं है। श्री पद्मप्रभमलधारी देव ने कोई अधिक टीका रची है।]

(२) वास्तव में पर्याय का कारण स्वयं पर्याय ही है क्योंकि वह स्वयं अपनी योग्यता से प्रगट हुई है। ध्रुव स्वभाव तो त्रिकाल एक रूप है। ध्रुव स्वभाव कारण त्रकालिक उपादान कारण की अपेक्षा कहा जाता है। क्षणिक उपादान कारण की अपेक्षा तो पर्याय स्वयं ही अपना कारण आप है। देखिये श्री प्रवचनसार सूत्र १७२ टीका का अलिंगग्रहण का अंतिम बीसवां बोल तथा विशद स्पष्टीकरण के लिये श्री चिद्विलास मे 'कारण काय' अधिकार।

नोट—मोक्षमार्ग में उपर्युक्त पांचों साध्य साधनों का कथन आता है। अतः मुमुक्षु को प्रत्येक का स्वरूप तथा उसकी वास्तविकता को भली भांति समझ लेना चाहिये। कहाँ कौन सा लिया है। इसका विवेक रहना चाहिये।

प्रश्न १०—यथाय साध्य साधन ही कहना चाहिय—असत्याय (उपचरित) साध्य साधन किस लिये कहा जाता है ?

उत्तर—जिसे सिंह का यथाय स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे सिंह के स्वरूप क उपचरित निरूपण द्वारा अर्थात् बिल्ली के स्वरूप क निरूपण द्वारा सिंह के यथाय स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं, उसी प्रकार जिसे वस्तु का यथाय स्वरूप सीधा समझ में न आता हो उसे वस्तु स्वरूप क उपचरित निरूपण द्वारा वस्तु स्वरूप की यथाय समझ की ओर ले जाते हैं। और लम्बे कथन के बदले में संक्षिप्त कथन करने के लिये भी व्यवहार नय द्वारा उपचरित निरूपण किया जाता है। यहां इतना लक्ष

योग्य है कि—जो पुरुष निश्चय के निरूपण को ही निश्चय का निरूपण मानकर किसी को ही निश्चय समझ ले वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है, उसी प्रकार जो पुरुष उपचरित निरूपण को ही सत्यार्थ निरूपण मानकर वस्तु स्वरूप को मिथ्या रीति से समझ बठे वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है।

यहा एक उदाहरण लिया जाता है।

साध्य साधन सम्बन्धी सत्यार्थ निरूपण इस प्रकार है कि—"छठे गुणस्थान में वर्तती हुई आंशिक शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।" अब, "छठे गुणस्थान में कसी अथवा कितनी शुद्धि होती है"—इस बात को भी साथ ही साथ समझाना हो तो, विस्तार से ऐसा निरूपण किया जाता है कि "जिस शुद्धि के सद्भाव मे, उसके साथ-साथ महाव्रतादि के शुभ विकल्प हठ विना सहजरूप से प्रवतमान हों वह छठे गुणस्थानयोग्य शुद्धि सातवें गुणस्थान योग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।" ऐसे लम्बे कथन के बदले, ऐसा कहा जाय कि 'छठे गुणस्थान मे प्रवतमान महाव्रतादि के शुभ विकल्प सातवें गुणस्थान योग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है', तो वह उपचरित निरूपण है। ऐसे उपचरित निरूपण में से ऐसा अर्थ निकालना चाहिये कि 'महाव्रतादि के शुभ विकल्प नहीं किन्तु उनके द्वारा जिस छठे गुणस्थान योग्य शुद्धि को बताना था वह शुद्धि वास्तव में सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।'

प्रश्न ११ परमार्थ साध्य साधन का टूक सार क्या है?

उत्तर—बारहवें गुणस्थान का शुद्ध पर्याय परिणत द्रव्य साधन तथा तेरहवें का शुद्धपर्यायपरिणत द्रव्य साध्य है अथवा (२) चौथे से बारहवें तक प्रत्येक गुणस्थान की शुद्ध पर्याय अगले गुणस्थान की शुद्ध पर्याय के लिये साधन है यह परमार्थ साध्य साधन भाव का टूकसार है।

प्रश्न १२—अपरमाय साध्य साधन भाव का ट्टटुमार क्या है ?

उत्तर—(१) चौथे से बारहवें गुणस्थान का शुभ अंश साधन और तेरहवें गुणस्थान का शुद्धपर्यायपरिणत द्रव्य साध्य है अथवा (२) चौथे से बारहवें में रहने वाला शुभ अंश अपने सहचर शुद्धअंश का साधन है अथवा (३) पूर्वगुणस्थान का शुभ भाव अगले गुणस्थान के शुद्ध भाव के लिये साधन है यह सब उपचरित साध्य साधन है।

प्रश्न १३—साध्य भाव के पर्यायवाची नाम बताओ ?

उत्तर—साध्य भाव, उपेयभाव, मोक्षभाव, सीधफल भाव, पुरुषार्थ की सिद्धि। ये तेरहवें की शुद्ध पर्याय (शुद्ध पर्याय परिणत द्रव्य) के नामान्तर हैं।

प्रश्न १४—साधन भाव के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—साधन भाव, उपायभाव, मोक्षमार्ग, सीध, पुरुषार्थसिद्धयुपाय ये चौथे से बारहवें गुणस्थान की पर्याय के नाम हैं।

५ आवश्यक सूचनायें

(१) शास्त्रों में कभी कभी दर्शन-ज्ञान चारित्र को भी, यदि वे परसमय प्रवृत्ति (राग) युक्त हों तो, कथंचित् बंध का कारण कहा जाता है, और कभी ज्ञानी को वर्तते हुये शुभ भावों को भी कथंचित् मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है। शास्त्रों से आने वाले ऐसे भिन्न भिन्न पद्धति के कथनों को सुलझाते हुये यह सारभूत वास्तविकता ध्यान में रखना चाहिये कि—ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्ध रूप मिश्र पर्याय वर्तती है तब वह मिश्रपर्याय एकान्त से संवर-निजरा मोक्ष को कारणभूत नहीं होती, अथवा एकांत से आस्रव बंध का कारणभूत नहीं होता,परन्तु उस मिश्रपर्याय का शुद्ध अंश संवर निजरा मोक्ष का कारणभूत होता है और अशुद्ध अंश आस्रव बंध का कारणभूत होता है।

(२) ज्ञानी को शुद्धाशुद्ध रूप मिश्र पर्याय में जो भक्ति-आदि-रूप शुभ अंश वर्तता है वह तो मात्र देवलोकादि के क्लेश की परम्परा का ही हेतु है और साथ ही साथ ज्ञानी को जो (मंदशुद्धिरूप) शुद्ध अंश परिणमित होता है वह संवर निर्जरा का तथा (उतने अंश में) मोक्ष का हेतु है। वास्तव में ऐसा होने पर भी, शुद्ध अंश में स्थित संवर निर्जरा मोक्ष हेतुत्व का आरोप उसके साथ के भक्ति आदि रूप शुभ अंश में करके उन शुभ भावों को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्ष प्राप्ति के हेतुभूत कहा गया है। यह कथन आरोप से (उपचार से) किया गया है ऐसा समझना। [ऐसा कथंचित् मोक्षहेतुत्व का आरोप भी ज्ञानी को ही वर्तते हुए भक्ति आदिरूप शुभ भावों में किया जा सकता है। अज्ञानी को तो शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में न होने से यथार्थ मोक्ष हेतु बिलकुल प्रगट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है तो फिर वहां उसके भक्ति-आदि रूप शुभभावों में आरोप किसका किया जाये ?]

(३) यहां यह ध्यान में रखने योग्य है कि जीव व्यवहार मोक्षमार्ग को भी अनादि अविद्या का नाश करके ही प्राप्त कर सकता है, अनादि अविद्या का नाश होने से पूर्व तो (अर्थात् निश्चय नय के—द्रव्यार्थिक नय के—विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पूर्व तो) व्यवहार मोक्षमार्ग भी नहीं होता अर्थात् चौथे गुणस्थान से पहले व्यवहार मोक्षमार्ग भी प्रारम्भ नहीं होता।

(४) "निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है" ऐसा जो कहा गया है वह व्यवहार नय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है। उसमें से ऐसा अर्थ निकालना चाहिये कि 'छठे गुणस्थान में वर्तते हुये शुभ विकल्पों को नहीं किन्तु छठे गुणस्थान में वर्तते हुये शुद्धि के अंश को और सातवें गुणस्थान योग्य निश्चय मोक्षमार्ग को वास्तव में साध्य

साधनपना है।' छठे गुणस्थान में वर्तता हुआ शुद्धि का अंश बढ़ कर जब और जितने काल तक उस शुद्धि के कारण शुभ विकल्पों का अभाव वर्तता है तब और उतने काल तक सातवें गुणस्थान योग्य निश्चय मोक्षमार्ग होता है।

(५) अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि का अन्तरंग लेशमात्र भी समाहित न होने से अर्थात् उसे द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण शुद्धि का अंश भी परिणमित न होने से उसे व्यवहार मोक्षमार्ग भी नहीं है अर्थात् अज्ञानी के जो नवपदार्थ श्रद्धान, आचारादि के ज्ञान तथा षट्काय के जीवों की रक्षा रूप चारित्र को व्यवहार मोक्षमार्ग की संज्ञा भी नहीं है। निश्चय के बिना व्यवहार कैसा। पहले निश्चय हो तो व्यवहार पर आरोप किया जावे।

कुछ आवश्यक संकेत

(१) चौथे गुणस्थान से पहले कोई भी रत्नत्रय नहीं है ऐसा श्री पंचास्तिकाय सूत्र १०६–१०७ टीका में नियम कर दिया है।

(२) निश्चयमार्ग का लक्षण बारहवें का लिया जाता है पर ग्रहण सातवें से बारहवें तक किया जाता है (श्री पंचास्तिकाय १०६, १५४)। वचन भेद (पर्यायों) द्वारा तथा अभेद (पर्यायों में वर्तते द्रव्य) द्वारा दोनों रूप से होता है। [गौण रूप से चौथे पांचवें छठे का शुद्ध अंश भी निश्चय मोक्षमार्ग का अंश है।]

(३) कहीं आत्मश्रद्धान ज्ञान-चारित्र तीनों की एकता को निश्चय मोक्षमार्ग न कहकर "केवल वीतराग चारित्र ही मोक्षमार्ग है" ऐसा भी कहा जाता है। अर्थ उसका भी सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता है (श्री पंचास्तिकाय सूत्र १०६,१५४)। ग्रहण उसमें भी मुख्यतया बारहवें का तथा गौणतया सातवें से बारहवें का है। चारित्र कहो या स्वरूप कहो या आत्मस्थिरता कहो या सम्यग्दर्शन

ज्ञान चारित्र की एकता कहो—एक ही बात है।

(४) व्यवहार मोक्षमार्ग का निरूपण छठे में चलने शुभ विकल्पों से किया जाता है पर पहले चौथे से बारहवें तक के शुभ अंश का लिया जाता है। यह मोक्षमार्ग नहीं है केवल उपचार (आरोपित) कथन है क्योंकि मोक्षमार्ग का सहचर या पूर्वचर है।

(५) वास्तविक साध्य साधन शुद्ध भाव का शुद्ध भाव के साथ है पर उपचार से शुभ शुद्ध में भी साध्य साधन दोनों की आगम पद्धति है (श्री पञ्चास्तिकाय १०७, १६०)।

(६) 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" में केवल शुद्ध अंश का ही ग्रहण है जैसाकि श्री पुरुषार्थ सिद्धि० सूत्र नं० २२, ३५, ३६ से स्पष्ट है। लक्षण सूत्रों में कहीं भी राग का ग्रहण नहीं होता चाहे वह किसी अनुयोग का भी ग्रन्थ क्यों न हो।

(७) व्यवहार मोक्षमार्ग में सहसा छठे का ग्रहण होता है और निश्चय मोक्षमार्ग में सहसा सातवें का ग्रहण होता है।

(८) प्राय चौथा, पांचवां, छठा गुणस्थान व्यवहार मोक्षमार्ग की मुख्यता से निरूपण किये जाते हैं और सातवें से बारहवां निश्चय मोक्षमार्ग की मुख्यता से निरूपण किये जाते हैं। ऐसी पद्धति है।

(९) प्राय: आत्मा का श्रद्धान ज्ञान चारित्र निश्चय मोक्षमार्ग का लक्षण लिखने की पद्धति है तथा ९ तत्त्वों का श्रद्धान, आचारादि का ज्ञान तथा षटकाय के जीवों की रक्षा व्यवहार मोक्षमार्ग का लक्षण लिखने की आगम पद्धति है।

(१०) व्यवहार निश्चय मोक्षमार्ग मे साध्य साधन भाव प्राय: छठे सातवें का लिया जाता है।

आगम प्रमाण

इस मोक्षमार्ग के प्रकरण को समझने के लिये निम्नलिखित आगम का अभ्यास लाभदायक है—

(१) श्री तत्त्वार्थसार अन्तिम अध्याय पूरा–सूत्र नं० २ से २१ तक। यह हमने आगे इसी में तथा श्री द्रव्यसंग्रह परमागम में स्पष्ट कर दिया है।
(२) श्री पंचास्तिकाय सूत्र १०६, १०७ तथा १५४ से १७२ तक टीका सहित। सोनगढ़ी टीका मे अत्यन्त स्पष्ट है।
(३) श्री पुरुषार्थसिद्धयुपाय सूत्र ४ से ८ तक तथा २२, ३५, ३६ तथा २११ से २२५ तक। हमने अपनी टीका में खूब स्पष्ट किया है।
(४) श्री द्रव्यसंग्रह सूत्र ३६ से ४६ तक हम स्पष्ट कर चुके हैं।
(५) श्री नियमसार सूत्र २ से ५ तक तथा ५१ से ५५ तक।
(६) श्री समयसार सूत्र १२ से १८ तक, १५५ तथा २७६–२७७।
(७) श्री प्रवचनसार सूत्र २३६ से २४२ तक तथा कलश नं० १६।
(८) श्री अध्यात्मकमलमार्तण्ड सूत्र ६ से १४ तक। मूल का विवेचन विद्वत्तापूर्ण है। उसका हार्द हमने टीका में खोल दिया है।

रत्नत्रय प्रगट करने की विधि (खास)

आत्मा को प्रथम द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय द्वारा जान कर पर्याय पर से लक्ष्य हटाकर अपने त्रिकाली सामान्य चैतन्य स्वभाव–जो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है—उसकी ओर झुकने से अर्थात् उपयोग को उसमें लीन करने से शुद्धता और निश्चय रत्नत्रय प्रगट होता है (सर्वोत्कृष्ट आगम प्रमाण श्रीसमयसार जी सूत्र १४३, १४४ कर्ता कर्म अधिकार के अन्तिम दो सूत्र)।

साधक जीव प्रारम्भ से अंत तक निश्चय की मुख्यता रखकर व्यवहार को गौण ही करता जाता है, इसलिये साधक की साधक दशा में निश्चय की मुख्यता के बल से शुद्धता की वृद्धि ही होती जाती है। और अशुद्धता हटती ही जाती है। इस तरह निश्चय की मुख्यता के बल से ही पूर्ण केवलज्ञान होता है। फिर वहाँ मुख्यता गौणता नहीं

होती और तब भी नहीं होते। यह भगवान् बनने का दूसरा उपाय है।

उपादान और उपादानकारण में भेद है। उपादान त्रिकाली द्रव्य है और उपादान कारण पर्याय है। जो जीव उपादान शक्ति को संभाल कर उपादान कारण को करता है उसके मुक्तिरूपी कार्य अवश्य प्रगट होता है। आत्मा अपने उपादान से स्वतन्त्र है। आत्मा की सच्ची श्रद्धा ज्ञान और स्थिरता ही कल्याण का उपाय है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

दो भारी भूल

प्रश्न १५—द्रव्यलिंगी मुनि के यह रत्नत्रय क्या प्रगट नहीं होता ?

उत्तर—पहले दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप राग रहित जाने और उसी समय 'राग धर्म नहीं है या धर्म का साधन नहीं है,' ऐसा माने। ऐसा मानने के बाद जब जीव राग को तोड़कर अपने ध्रुव स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प होता है तब निश्चय मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है और तभी शुभ विकल्पों पर व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप आता है। द्रव्यलिंगी तो उपचरित धर्म को ही निश्चय धर्म मानकर उसी का निश्चयवत् सेवन करता है। उसका व्यय करके निर्विकल्प नहीं होता। व्यवहार करते-करते निश्चय कभी प्रगट नहीं होता किन्तु व्यवहार का व्यय करके निश्चय प्रगट होता है। व्यवहार का साधन परसन्मुख है। निश्चय का साधन स्वाश्रय है। बड़ा अन्तर है। लाईन ही दोनों की भिन्न २ है। जब भव्य स्वसन्मुखता के बल से स्वरूप की तरफ झुकता है तब स्वयमेव सम्यग्दर्शनमय, सम्यग्ज्ञानमय तथा सम्यक्चारित्रमय हो जाता है। इसलिये यह स्व से अभेदरूप रत्नत्रय की दशा है और यह यथार्थ वीतराग दशा होने के कारण निश्चय रत्नत्रय रूप कही जाती है। इस से यह बात माननी पड़ेगी कि जो व्यवहार रत्नत्रय है वह यथार्थ रत्नत्रय नहीं है। इसलिये उसे हेय कहा जाता है। यदि आप उसी

में लगा रहे तो उस का तो वह व्यवहार माग मिथ्यामार्ग है। निरूप योगी है। यों कहना चाहिये कि उस साधु ने उसे हेय रूप न जानकर यथार्थरूप समझ रक्खा है। जो जिसे यथार्थ रूप जानता और मानता है वह उसे कदापि नहीं छोड़ता। इसलिये उस साधु का व्यवहार माग मिथ्यामाग है अथवा वह अज्ञानरूप ससार का कारण है। उसे ससार तत्व कहा है।

मुनिव्रत धार अनन्तवार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

उसकी क्या भूल रह जाती है। इसके जानने के लिये आगे "व्यवहार नय के पक्ष के सूक्ष्म आशय का स्वरूप और उसे दूर करने का उपाय" नामा लेख पढ़िये।

सावधान—उसी प्रकार जो व्यवहार को हेय समझ कर अशुभ भाव मे रहता है और निश्चय का अवलम्बन नहीं करता वह उभयभ्रष्ट (शुद्ध और शुभ दोनों से भ्रष्ट) है। निश्चय नय का अवलम्बन प्रगट नहीं हुआ और जो व्यवहार को तो हेय मानकर अशुभ में रहा करते हैं वे निश्चय के लक्ष से शुभ में भी नहीं जाते तो फिर वे निश्चय तक नहीं पहुच सकते—यह निर्विवाद है। सावधान रहिये उपयुक्त दोनों भूलें आप में न हो जावें।

व्यवहार करते २ उसके अवलम्बन से निश्चय हो जायगा ऐसी जिस की मान्यता है, उसको दिगम्बर जन सिद्धांत में व्यवहार विमूढ़ कहा है। (श्री समयसार सूत्र ४१३ टीका)।

श्री तत्वार्थसार से

मोक्षमार्ग की नयाधीन कथन पद्धति

निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थित।
तत्राद्य साध्यरूप स्याद्द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥२॥

सूत्रार्थ—निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग के भेद से मोक्षमार्ग दो प्रकार स्थित (विद्यमान) है। उन दोनों में पहला (निश्चय मोक्षमार्ग) साध्य रूप है। दूसरा (व्यवहारमोक्षमार्ग) उस निश्चय मोक्षमार्ग का साधन है।

भावार्थ—चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के वीतराग शुद्ध परिणमन को निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं और साथ में रहते हुये शुभ भाव रूप (राग) अंश को व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं। निश्चय मोक्षमार्ग साध्य रूप है तथा व्यवहार मोक्षमार्ग उसका साधन रूप है। दृष्टांत इस प्रकार है कि सातवें गुणस्थान में जो अपनी आत्मा का श्रद्धान ज्ञान चारित्र है वह शुद्ध भाव रूप है। निश्चय मोक्षमार्ग है। साध्यरूप है। और छठें गुणस्थान में मुनि के (शुद्धांश के साथ वर्तता हुआ) जो तत्वों का श्रद्धान, रूप शुभ विकल्प, आचारादि शास्त्रों के ज्ञान, रूप शुभ विकल्प तथा षट्काय के जीवों की रक्षा रूप शुभ विकल्प—ये व्यवहार मोक्षमार्ग है। ये विकल्पात्मक व्यवहार मोक्षमार्ग ऊपर के निर्विकल्पात्मक मोक्षमार्ग का साधन है। वह साध्य है। यह उपचरित साध्य साधन है वास्तव में तो छठें का शुद्ध अंश सातवें के शुद्ध अंश का साधन है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १६—निश्चय नय का क्या अर्थ है?

उत्तर—'सत्यार्थ इसी प्रकार है' ऐसा जानना सो निश्चय नय है।

प्रश्न १७—व्यवहार नय का क्या अर्थ है?

उत्तर—ऐसा जानना कि "सत्यार्थ इस प्रकार नहीं है किन्तु सहचर या पूर्वचर की अपेक्षा उपचार किया है" सो व्यवहार है।'

मोक्ष मार्ग दो नहीं

मोक्षमार्ग तो कहीं दो नहीं हैं किन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो तरह से है। जहां सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपण किया है वह

निश्चय (यथार्थ) मोक्षमार्ग है, तथा जो मोक्षमार्ग तो नहीं है किन्तु मोक्षमार्ग मे पूर्वचर है अथवा साथ मे होता है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाता है लेकिन वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है।

शुभ शुद्ध का साधन नही है

यद्यपि साध्य साधन तो शुद्ध भाव का ही शुद्ध भाव के साथ है पर उपचार से शुभ को भी शुद्ध का साधन कहने की आगम पद्धति है। वह उपचार कथन है। परमार्थ नहीं है। ऐसा जानना।

पर्यायार्थिक नय से निश्चयमोक्षमार्ग का लक्षण (स्वरूप)

श्रद्धानाधिगमोपेक्षा शुद्धस्य स्वात्मनो हि या ।
सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्ग स निश्चय ॥३॥

सूत्रार्थ—जो अपनी शुद्ध आत्मा के (अभेद रूप से विकल्प रहित) श्रद्धान ज्ञान उपेक्षा हैं, सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्रस्वरूप वह निश्चय मोक्षमार्ग है अर्थात् उन तीन पर्यायों की एकता निश्चय मोक्षमार्ग है।

भावार्थ—जो अपनी त्रिकाली ज्ञायक आत्मा (पारिणामिक भाव, सामान्य भाव, ध्रुव स्वभाव) के श्रद्धान ज्ञान स्थिरता रूप तीनों गुणों के अपनी अपनी पर्यायों में शुद्ध परिणमन हैं—वे परिणमन सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र स्वरूप तीनों अर्थात् पानकवत् तीनों की एकता निश्चय मोक्षमार्ग है। पूर्णरूप से तो यह बारहवें गुणस्थान में होता है उसे कहा सातवें से भी जाता है क्योंकि बुद्धिपूर्वक राग का अभाव होने से तीनों की एकता है और अबुद्धिपूर्वक राग की गौणता कर देते हैं। "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" में सदा इसी मोक्षमार्ग का ग्रहण होता है। यह अटल नियम है। यह पर्यायार्थिक नय से निश्चय मोक्षमार्ग का कथन है।

पर्यायार्थिक नय से व्यवहार मोक्षमार्ग का लक्षण (स्वरूप)

श्रद्धानाधिगमोपेक्षा या पुन स्यु परात्मना ।
सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा स मार्गो व्यवहारत ॥४॥

सूत्रार्थ—और जो परपने से (परद्रव्य रूप से) श्रद्धान ज्ञान उपेक्षा हैं, सम्यक्त्वज्ञानचारित्रस्वरूप वह व्यवहार से मोक्षमार्ग है।

भावार्थ—और जो परद्रव्यस्वरूप देव शास्त्र गुरु का या ६ तत्त्वों का भेद रूप से राग सहित श्रद्धान करना है तथा आचारादि अङ्गों का भेद रूप से राग सहित ज्ञान करना है तथा षट्काय के जीवों की रक्षा में प्रवृत्ति रूप शुभ विकल्प है, ये तीनों प्रकार के विकल्प एकत्रित होकर व्यवहार मोक्षमार्ग है जैसे छठे गुणस्थान में (शुद्धोश के साथ २) मुनि के तीनों अखण्ड रूप से वर्तते हैं। यह वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं है इसलिये इसका नाम व्यवहार मोक्षमार्ग है। नकली को ही व्यवहार कहते हैं। उपचरित, असत्यार्थ, अभूतार्थ, नकली, झूठा व्यवहार ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। झूठा क्यों है? क्योंकि मुख से मोक्षमार्ग कह रहे हैं पर मोक्षमार्ग है नहीं। यह पर्यायार्थिक नय से व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन है।

द्रव्यार्थिक नय से व्यवहार मोक्षमार्ग का लक्षण (स्वरूप)

श्रद्धधान परद्रव्य बुद्धयमानस्तदेव हि।
तदेवोपेक्षमाणश्च व्यवहारी स्मृतो मुनि ॥५॥

सूत्रार्थ—परद्रव्य को श्रद्धान करता हुआ, और उस पर द्रव्य को ही जानता हुआ और उस परद्रव्य को ही उपेक्षा करता हुआ मुनि-व्यवहारी मुनि माना गया है अर्थात् अभेद दृष्टि से वह शुभोपयोगी मुनि ही व्यवहार मोक्षमार्ग है।

भावार्थ—ये तत्त्व हेय हैं, ये तत्त्व उपादेय हैं। इस प्रकार से हेय उपादेय के विवेकपूर्वक ६ तत्त्वों को श्रद्धान करने वाला, इसी प्रकार ये शास्त्र खोटे हैं—ये खरे हैं इस प्रकार आचारादि शास्त्रों को जानता हुआ तथा पाँचपापों की अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्ति होकर षट्काय के जीवों की रक्षा रूप शुभ प्रवृत्ति अर्थात् ५ व्रत के परिणमन रूप शुभ करण

प्रमाण दृष्टि से निश्चय मोक्षमार्ग का लक्षण (स्वरूप)

आत्मा ज्ञातृतया ज्ञानं सम्यक्त्वं चरितं हि सः ।
स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः ॥७॥

सूत्रार्थ—आत्मा जानने से स्वयं ज्ञान है, आत्मा श्रद्धान करने से स्वयं सम्यक्त्व है और वह ही आत्मा दर्शनमोह और चारित्रमोह से अलिप्त होता हुआ—स्व में स्थित चारित्र है। [इस प्रकार पर्याय से तन्मय आत्मा अर्थात् दोनों मिलकर मोक्षमार्ग हैं।]

भावार्थ—ऊपर के श्लोक में जो बात कही थी उसी की यहाँ पुष्टि की है अर्थात् पर्यायों को मोक्षमार्ग न कहकर जो उन पर्यायों से अभेद रूप में वर्तते हुये द्रव्य को मोक्षमार्ग कहा है। इसमें यह युक्ति दी है कि यहाँ आत्मा जानने का काम राग रहित स्वयं अपने स्वहेतुक पर्याय से अभेद रूप से करता हुआ आत्मा ही स्वयं ज्ञानरूप हो रहा है। द्रव्य और पर्याय में भेद तो राग डाल रहा था वह दूर हो गया है अर्थात् राग सहित परिणमन स्वपरहेतुक पर्याय थी वह आत्मा का रूप नहीं था—यह तो अकेले ज्ञायक का परिणमन है। अतः स्वयं ज्ञायक ही है। इस प्रकार श्रद्धान में स्व की श्रद्धा रूप से अभेद राग रहित परिणमन करता हुआ वह आत्मा ही तो स्वयं सम्यक्त्वरूप है तथा दर्शनमोह और चारित्रमोह से रहित होता हुआ वह आत्मा ही तो स्वयं स्व में स्थित हुआ है। ज्ञायक ही तो ज्ञायक में ठहर कर ज्ञायक रूप हुआ है। अतः अभेद दृष्टि से ये पर्यायें मोक्षमार्ग रूप न होकर उन पर्यायों में तन्मय रूप से वर्तता हुआ द्रव्य ही मोक्षमार्ग है जैसे सातवें से बारहवें गुणस्थान का मुनि। यह प्रमाण से निश्चय मोक्षमार्ग का कथन है। इसमें द्रव्य पर्याय दोनों को मिलकर मोक्षमार्ग कहने का आशय है।

पर्यायार्थिक नय द्रव्यार्थिक नय तथा प्रमाण से निश्चय मोक्षमार्ग की कथन पद्धति रूप उपसंहार (खास)

स्यात्सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररूप पर्यायार्थादेशतो मुक्तिमार्गं ।
एको ज्ञाता सर्वदैवाद्वितीय स्याद्द्रव्यार्थादेशतो
मुक्तिमार्गं ॥२१॥

सूत्रार्थ—पर्यायार्थिक नय के कथन से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की एकता मुक्तिमार्ग है और द्रव्यार्थिक नय के कथन से (उन तीन पर्यायों में तन्मयरूप से वर्तने वाला) सदा अद्वितीय एक ज्ञाता (जीवद्रव्य) ही मुक्तिमार्ग है।

भावार्थ—अब उपयुक्त निश्चय (वास्तविक) मोक्षमार्ग को ही आगम में कथन करने की पद्धतियां बतलाते हैं कि पर्याय दृष्टि से देखो तो श्रद्धा ज्ञान चारित्र की शुद्ध पर्यायों की एकता मुक्तिमार्ग है और द्रव्यदृष्टि से देखो तो उन शुद्ध पर्यायों में तन्मयरूप से परिणमन करने वाला एक ज्ञायक आत्मद्रव्य ही मुक्तिमार्ग है [और प्रमाणदृष्टि से देखो तो जो पर्यायें हैं वही तो द्रव्य है पानकवत्। द्रव्य और पर्यायों का अभेद हो गया है। अतः प्रमाणदृष्टि से पर्याय और द्रव्य दोनों मिलकर मोक्षमार्ग है (प्रमाण श्री प्रवचनसार सूत्र २४२ टीका तथा उसी का कलश नं० १६)]। इस सूत्र में व्यवहार का (राग का) ग्रहण रंचमात्र नहीं है। पर्यायार्थिक नय से द्रव्यार्थिक नय से तथा प्रमाण से—तीनों दृष्टियों से यह सच्चे (वास्तविक) मोक्षमार्ग का निरूपण है। यह "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" का वास्तविक अर्थ है। यही सारे ग्रंथ का सार है। इस प्रकार मोक्षमार्ग एक रूप ही है। केवल पर्यायार्थिक दृष्टि से, द्रव्यार्थिक दृष्टि से और प्रमाण दृष्टि से समझा तीन प्रकार जाता है और व्यवहार मोक्षमार्ग तो मोक्षमार्ग ही नहीं है—केवल कहने मात्र की वस्तु है। मोक्षमार्ग तो संवर निर्जरा रूप होता हुआ मोक्ष का

कारण बनता है। वह तो ग्रास्रव बंध करता हुआ चन्दन के वृक्षवत् विषय सुख की आग में जलाता है। यह पर्यायार्थिक नय द्रव्यार्थिक नय तथा प्रमाण से निश्चय मोक्षमार्ग का कथन है।

वीतराग मोक्षमार्ग की जय हो !
वीतराग मोक्षमार्ग से स्थित सन्तों की जय हो !!
ऐसे मार्ग और मार्ग में स्थित पुरुषों को भक्तिभाव पूर्वक
पुन पुन नमस्कार हो !!!

आपके हित की बात (सास)

मुमुक्षु को यह बात बराबर ध्यान रखना चाहिये कि जन धर्म का सब खेल दृष्टियों पर निर्भर है—जिसको नयवाद भी कहते हैं। दृष्टिवाद में निपुण व्यक्ति ही वस्तु स्वरूप का मर्म पा सकता है। पर ये दृष्टिवाद इतना गहन है कि नय रूपी सुदर्शन चक्र के चलाने वाले गुरु ही इसमें शरण हो सकते हैं। उपयुक्त जो मोक्षमार्ग निरूपण किया है उसे निम्न प्रकार दृष्टियों से—दृष्टिवाद के शिरोमणि श्री अमृतचन्द्र आचार्यदेव ने—लिखा है। गुरु कृपा से हमने उनके हृदय की बात जानकर यहां लिख दी है। आप भी इन सूत्रों को इन दृष्टियों से ही पुन पुन विचारिये तथा यदि समव हो सके तो किसी ज्ञानी पुरुष के सहवास में समझिये। विशेष लाभ होगा।

सूत्र नं०	२	मोक्षमार्ग की नयाधीन कथन पद्धति।
,,	३	पर्यायार्थिक नय से निश्चय मोक्षमार्ग का लक्षण
,,	४	,, ,, व्यवहार ,, ,,
,,	५	द्रव्यार्थिक नय ,, ,, ,, ,,
,,	६	,, ,, निश्चय ,, ,,
,,	७	प्रमाणदृष्टि ,, ,, ,, ,,
,,	८	पर्यायार्थिक नय, द्रव्यार्थिक नय तथा प्रमाण से निश्चय मोक्षमार्ग की कथन पद्धति।

आप जानते ही हैं कि इन्हीं आचार्यदेव ने श्री पंचाध्यायी की प्रथम तीन पुस्तकों में जितना दृष्टिवाद दिखाया है। दृष्टिवाद के विषय प्रतिपादन इनकी एक अलौकिक देन है। हमसे जितना बन सका है—उतना खोला है। विषय गुरुगम आधीन है।

सावधान

प्राय ऐसा देखा गया है कि जीव या तो उपचार रत्नत्रय (व्यवहार रत्नत्रय) को ही निश्चय रत्नत्रय मानकर उसका निश्चयवत् सेवन करते हैं और इस प्रकार एकान्तव्यवहाराभासी बने रहते हैं और कोई कोई सज्जन वास्तविक निश्चय को न जानते हुये केवल निश्चय का अधिक पक्ष करके व्यवहार आचरण से बिलकुल विमुख हो जाते हैं अर्थात् एकांत निश्चयाभासी हो जाते हैं किन्तु ऐसे विरले ही जीव देखने में आये हैं जो दोनों के परस्पर सुमेल सहित आचरण करते हैं। इसका यह कदापि अर्थ नहीं कि दोनों को समान रूप से उपादेय मानकर आचरण किया जाय किन्तु इस का अर्थ यह है कि निश्चय को सच्चा मोक्षमार्ग समझे, व्यवहार को उपचार मोक्षमार्ग समझे। निश्चय को उपादेय और उससे मुक्ति माने—व्यवहार को शुभ भाव रूप राग माने। इस का फल स्वर्ग पुण्यभाग माने–किन्तु इसे निश्चय का सहचर या पूर्वचर अवश्य माने क्योंकि चौथे से बारहवें गुणस्थान की पर्याय का नाम मोक्ष मार्ग है और उसमें दोनों साथ २ रहते हैं। तेरहवें में मोक्ष प्राप्तिपूर्वक दोनों का एक समय में ही अभाव होता है। बारहवें में जितना अज्ञान भाव है उतना व्यवहार है सोई श्री समयसार जी की बारहवीं गाथा में कहा है कि केवलियों को व्यवहार से कुछ प्रयोजन नहीं है पर साधक को उससे प्रयोजन है अर्थात् साधक में वह सहचर है। साधक का ध्येय है। इस विषय में आगम में निम्नलिखित तीन सूत्र प्राचीन परम्परा से चले आ रहे हैं। इनका कर्ता कौन है या ये किस आगम के

पता न चल सका पर हैं द्वादशांग के सीधे सूत्र। यह बहुत जरूरी है। मूल तथा शब्दार्थ भावार्थ यहां दिया जाता है। स्पष्टीकरण के लिये श्री पंचास्तिकाय अन्तिम २० सूत्रों का टीका सहित अभ्यास करिये। उसमें इन तीनों का मर्म जैसा अलौकिक तथा विस्तृत खोला गया है वैसा अन्यत्र किसी आगम में नहीं है। उसके पक्के अभ्यास से एकान्त बुद्धि का नाश होकर अनेकान्त रूप सच्ची दृष्टि बनेगी। श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी इस विषय पर काफी प्रकाश डाला गया है। वे तीन श्लोक ये हैं—

१ एकान्त व्यवहाराभासी का स्वरूप

चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कवावारा।
चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति॥

चरणकरणप्रधानाः स्वसमयपरमार्थमुक्तव्यापाराः।
चरणकरणस्य सारं निश्चयशुद्धं न जानन्ति॥

सूत्रार्थ—जो चरणपरिणामप्रधान हैं और स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापार रहित हैं, वे चरण परिणाम का सार जो निश्चय शुद्ध (आत्मा) उसको जानते नहीं हैं।

भावार्थ—जो केवल व्यवहार का अवलम्बन करने वाले हैं वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव[1] के अवलोकन द्वारा निरन्तर अत्यन्त

[1] वास्तव में साध्य और साधन अभिन्न होते हैं। जहां साध्य और साधन भिन्न कहे जायें वहां "यह सत्यार्थ निरूपण नहीं है किन्तु व्यवहार नय द्वारा उपचरित निरूपण किया है"—ऐसा समझना चाहिये। केवल व्यवहारावलम्बी जीव इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते हुये अर्थात् "वास्तव में शुभभाव रूप साधन से ही शुद्ध भाव रूप साध्य प्राप्त होगा" ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुये निरंतर अत्यन्त खेद प्राप्त करते हैं।

खेद पाते हुवे (१) पुनः पुनः धर्मादि के श्रद्धान रूप अध्यवसान में उनका चित्त लगता रहने से (२) बहुत द्रव्य श्रुत के संस्कारों से उठने वाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल द्वारा उनकी चतन्यवृत्ति चित्रविचित्र होती है इसलिये और (३) समस्त यति-आचार के समुदाय रूप तप मे प्रवर्तन रूप कर्मकाण्ड की धमाल में वे अविचल रहते हैं इसलिये (१) कभी किसी विषय की रुचि करते हैं (२) कभी किसी विषय के विकल्प करते हैं और (३) कभी कुछ आचरण करते हैं, दर्शनाचरण के लिये—वे कदाचित् प्रशमित होते हैं, कदाचित् संवेग को प्राप्त होते हैं कदाचित् अनुकम्पित होते हैं, कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और अमूढ़दृष्टिता के उत्थान को रोकने के हेतु नित्य कटिबद्ध रहते हैं, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना को भाते हुये बारम्बार उत्साह को बढ़ाते हैं, ज्ञानाचरण के लिये स्वाध्याय काल का अवलोकन करते हैं, बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं, दुर्धर उपधान करते हैं, भली भांति बहुमान को प्रसारित करते हैं, निह्नवदोष को अत्यन्त निवारते हैं, अर्थ को, व्यञ्जन को और दोनों की शुद्धि में अत्यन्त सावधान रहते हैं, चारित्राचरण के लिये—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह की सर्वविरति रूप पंचमहाव्रतों में तल्लीन वृत्ति वाले रहते हैं, सम्यक् योगनिग्रह जिनका लक्षण है (योग का बराबर निरोध करना जिनका लक्षण है) ऐसी गुप्तियों में अत्यन्त उद्योग रखते हैं, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग रूप समितियों में प्रयत्न को अत्यन्त युक्त करते हैं, तपश्चरण के लिये—अनशन अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश में सतत उत्साहित रहते हैं, प्रायश्चित्त, विनय वैयावृत्य व्युत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यानरूप परिकर (समूह) द्वारा निज अन्तःकरण को अंकुशित रखते हैं, वीर्याचरण के लिये कर्मकाण्ड में सर्व शक्ति द्वारा व्याप्त रहते हैं, ऐसा करते हुये कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण —यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है तथापि—शुभ

कर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है ऐसे वे, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्य परिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुये, बहुत पुण्य के भार से जड़ हुई चित्तवृत्ति वाले वर्तते हुये, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा द्वारा अत्यन्त दीर्घकाल तक संसार सागर में भ्रमण करते हैं।

२ एकान्त निश्चयाभासी का स्वरूप

णिच्छयमालम्बन्ता णिच्छयदो णिच्छय अयाणन्ता ।
णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई ॥

निश्चय आलम्बन्त निश्चयत निश्चय अजानन्त ॥
नाशयन्ति चरणकरणं बाह्यचरणालसा के अपि ॥

सूत्रार्थ—निश्चय को अवलम्बन करने वाले परन्तु निश्चय से (वास्तव में) निश्चय को नहीं जानने वाले कुछ जीव बाह्य चरण में आलसी वर्तते हुये चरण परिणाम को नाश करते हैं।

भावार्थ—जो केवल निश्चय नय को अवलम्बन करने वाले हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुये, आंखों को अधमुंदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर यथासुख[१] रहते

[१] यथासुख = इच्छानुसार, जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे, यथेच्छरूप से जिन्हें द्रव्यार्थिक नय के (निश्चय नय के) विषयभूत शुद्धात्म द्रव्य का सम्यक् श्रद्धान या अनुभव नहीं है तथा उसके लिये उत्सुकता चाह या प्रयत्न नहीं है ऐसा होने पर भी जो निज कल्पना से अपने में किंचित् भास होने की कल्पना करके निश्चितरूप से स्वच्छन्द पूर्वक वर्तते हैं "ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवों का प्राथमिक दशा में आंशिक शुद्धि के साथ २ भूमिकानुसार शुभ भाव भी होते हैं"—इस बात की श्रद्धा नहीं करते, उन्हें यहां केवल निश्चयावलम्बी कहा है।

हैं (अर्थात् स्वमति कल्पना से कुछ भी भाव की कल्पना करके इच्छानुसार—जैसे कुछ उत्पन्न हो वैसे—रहते हैं), वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव[1] को तिरस्कारते हुये, अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुये, अन्तराल में ही (-शुभ तथा शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशा में ही), प्रमादमदिरा के मद से भरे हुये आलसी चित्त वाले वर्तते हुये, उन्मत्त जैसे, मूर्च्छित जैसे, सुषुप्त जैसे, बहुत घी—शक्कर खीर खाकर तृप्त हुये हों ऐसे, मोटे शरीर के कारण जड़ता (-मन्दता निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे, दारुण बुद्धिभ्रंश से मूढ़ता हो गई हो ऐसे जिस का विशिष्ट चैतन्य मुंद गये हैं ऐसी वनस्पति जैसे, मुनीन्द्र की कर्मचेतना को पुण्यबंध[2] के भय से न अवलम्बते हुये और परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना में विश्रान्ति को प्राप्त न होते हुये, (मात्र) व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के आधीन वर्तते हुये, प्राप्त हुये निकृष्ट कर्मफल की चेतना के प्रधानपने वाली प्रवृत्ति जिसे वर्तती है ऐसी वनस्पति की भाँति, केवल पाप को ही बांधते हैं।

---

[1] मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को सविकल्प प्राथमिक दशा में (छठे गुणस्थान तक) व्यवहार नय की अपेक्षा से भूमिकानुसार भिन्न साध्य साधन भाव होते हैं अर्थात् भूमिकानुसार नवपदार्थों सबंधी, अणुव्रत सम्बन्धी और श्रावक मुनि के आचार सम्बन्धी शुभ भाव होते हैं। यह बात केवल निश्चयावलम्बी जीव नहीं मानते अर्थात् (आंशिक शुद्धि के साथ की) शुभ भाव वाली प्राथमिक दशा को वे नहीं श्रद्धते और स्वयं अशुभ भावों में वर्तने होने पर भी अपने में उच्च शुद्ध दशा की कल्पना करके स्वच्छन्दी रहते हैं।

[2] केवल निश्चयावलम्बी जीव पुण्यबन्ध के भय से डरकर मंद कषाय रूप शुभ भाव नहीं करते और पापबन्ध के कारणभूत अशुभ भावों का सेवन तो करते रहते हैं। इस प्रकार वे पाप करते हैं।

अनेकान्ती का स्वरूप

अब निश्चय व्यवहार दोनों का सुमेल रहे इस प्रकार भूमिका नुसार प्रवर्तन करने वाले ज्ञानी जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है—

अनादिकाल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव[1] का अवलम्बन लेकर सुख से[2] तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं (अर्थात् सुगम रूप से मोक्षमार्ग की प्रारम्भिक भूमिका का सेवन करते हैं) जैसे कि—"(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करने योग्य) है (२) यह अश्रद्धेय है (३) यह श्रद्धान करने वाला है और (४) यह

---

[1] मोक्षमार्गप्राप्त ज्ञानी जीवों को प्राथमिक भूमिका में, साध्य तो परिपूर्ण शुद्धता रूप से परिणत आत्मा है और उसका साधन व्यवहार नय से (आंशिक शुद्धि के साथ-साथ रहने वाले) भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं। इस प्रकार उन जीवों को व्यवहार नय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गये हैं। (निश्चय नय से साध्य और साधन अभिन्न होते हैं)।

[2] सुख से = सुगमता से, सहजरूप से कठिनाई बिना। [जिन्होंने द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धानादि किये हैं ऐसे सम्यग्ज्ञानी जीवों को तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में (-मोक्षमार्ग सेवन की प्रारम्भिक भूमिका में) आंशिक शुद्धि के साथ २ श्रद्धान-ज्ञान चारित्र सम्बन्धी परावलम्बी विकल्प (भेदरत्नत्रय) होते हैं, क्योंकि अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित परिणति चली आ रही है उसका तुरंत ही सर्वथा नाश होना कठिन है।

श्रद्धान है, (१) यह ज्ञेय (जानने योग्य) है, (२) यह श्रज्ञेय है (३) यह ज्ञाता है और (४) यह ज्ञान है, (१) यह अनाचरणीय (आचरण करने योग्य) है (२) यह आचरणीय है (३) यह आचरण करने वाला है और (४) यह आचरण है।" इस प्रकार (१) कर्तव्य (करने योग्य) (२) अकर्तव्य (३) कर्ता और (४) कर्मरूप विभागों के अवलोकन द्वारा जिन्हें सुन्दर उत्साह उल्लसित होता है ऐसे वे प्राथमिक जीव धीरे २ मोह मल्ल को (रागादि को) उखाड़ते जाते हैं, कदाचित् अज्ञान के कारण (स्वसंवेदनज्ञान के अभाव के कारण) मद (कषाय) और प्रमाद के वश होने से अपना आत्म-अधिकार (आत्मा में अधिकार) शिथिल हो जाने से अपने को न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए वे प्रचंड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं, पुनः पुनः (अपने आत्मा को) दोषानुसार प्रायश्चित देते हुये वे सतत उद्यमवन्त वर्तते हैं, और भिन्न विषय वाले[1] श्रद्धान ज्ञान-चारित्र द्वारा (आत्मा से भिन्न जिसके विषय हैं ऐसे भेद रत्नत्रय द्वारा) जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं ऐसे भिन्न साध्यसाधन भाववाले अपने आत्मा में—धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जाने वाले, निर्मल जल द्वारा भिगोये जाने वाले और क्षार (साबुन) लगाये जाने वाले मलिन वस्त्र की भाँति—थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि[2] प्राप्त करके, उसी

---

[1] व्यवहार श्रद्धान ज्ञानचारित्र के विषय आत्मा से भिन्न हैं, क्योंकि व्यवहार श्रद्धान का विषय नव पदार्थ हैं व्यवहार ज्ञान का विषय अङ्ग पूर्व हैं और व्यवहार चारित्र का विषय आचारादिसूत्र कथित मुनि आचार है।

[2] जिस प्रकार धोबी पाषाण शिला पानी और साबुन द्वारा मलिन वस्त्र की शुद्धि करता जाता है उसी प्रकार प्राक्पदवी स्थित ज्ञानी जीव भेद रत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा में संस्कार का आरोपण करके उस की थोड़ी-थोड़ी शुद्धि करता जाता है ऐसा व्यवहार नय से कहा जाता है। परमार्थ ऐसा है कि उस भेद रत्नत्रयवाले ज्ञानी जीव को

अपने आत्मा को निश्चय नय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण, दर्शनज्ञानचारित्र का समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण (अभाव के कारण) जो निस्तरंग परम चैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है ऐसे भगवान आत्मा में विश्रांति रचते हुये (अर्थात् दर्शनज्ञानचारित्र के ऐक्यस्वरूप, निर्विकल्प परम चैतन्यशाली तथा भरपूर—आनन्दयुक्त ऐसे भगवान् आत्मा में अपने को स्थिर करते हुये), क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है इसलिये परम वीतराग भाव को प्राप्त करके साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं।

अब हम जीवन के व्यवहार निश्चय का मेल किस प्रकार है। इसका समन्वय दिखलाते हैं—

जो मोक्ष के लिते नित्य उद्योग करने वाले महा भाग्यशाली भगवन्तों[1] निश्चय व्यवहार में से किसी एक को ही अवलम्ब न लेने से

*जो शुभ भावों के साथ जो शुद्धात्मस्वरूप का आंशिक आलम्बन वर्तता है वही उग्र होते २ विशेष शुद्धि करता जाता है। इसलिये वास्तव में तो, शुद्धात्मस्वरूप का अवलम्बन करना ही शुद्धि प्रगट करने का साधन है और उस अवलम्बन की उग्रता करना ही शुद्धि की वृद्धि करने का साधन है। साथ रहे हुवे शुभ भावों को शुद्धि की वृद्धि का साधन कहना वह तो मात्र उपचार कथन है। शुद्धि की वृद्धि के उपचरित साधनपने का आरोप भी उसी जीव के शुभ भावों में आ सकता है कि जिस जीव ने शुद्धि की वृद्धि का यथार्थ साधन (-शुद्धात्मस्वरूप का यथोचित आलम्बन) प्रगट किया हो।

[1] मोक्ष के लिये नित्य उद्यम करने वाले महापवित्र भगवन्तों को (-मोक्ष मार्गी ज्ञानी जीवों को) निरंतर शुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्म स्वरूप का सम्यक् अवलम्बन वर्तता होने से उन जीवों को उस

(केवल निश्चयावलम्बी या केवल व्यवहारावलम्बी न होने से) अत्यन्त मध्यस्थ वर्तते हुये, शुद्ध चतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति की विरोध रचना की ओर उन्मुख वर्तते हुये, प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्ति को टालने वाली क्रियाकाण्ड परिणति को माहात्म्य में से वारते हुये (शुभ क्रियाकाण्ड परिणति हठ रहित सहज रूप से भूमिकानुसार वर्तती होने पर भी अन्तरङ्ग में उसे माहात्म्य न देते हुये), अत्यन्त उदासीन वर्तते हुये, यथाशक्ति आत्मा को आत्मा से आत्मा में संचेतते (अनुभवते) हुये नित्य-उपयुक्त रहते हैं, वे (महाभाग भगवन्तों), वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार क्रमशः कर्म को सन्यास करते हुये (स्वतत्त्व में स्थिरता होती जावे तदनुसार शुभ भावों को छोड़ते हुये), अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कम्पमूर्ति होने से जिन्हें वनस्पति की उपमा दी जाती है तथापि जिन्होंने कर्मफलानुभूति अत्यन्त नष्ट की है ऐसे, कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते हुये, मात्र ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए, शीघ्र संसार समुद्र को पार उतर कर, शब्दब्रह्म के शाश्वत फल के (निर्वाणसुख के) भोक्ता होते हैं।

३ उपाय और उपेय भाव की संधि

जइ जिरामय पवज्जह ता मा ववहारगिच्छए मुयह ।
एकेरा विरा छिज्जइ तित्थं अण्णेरा उरा तच्चं ॥

अर्थ—आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो ! यदि तुम जिनमत का प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों को

*अवलम्बन की तरतमतानुसार सविकल्प दशा में भूमिकानुसार शुद्ध परिणति तथा शुभ परिणति का यथोचित सुमेल (हठ रहित) होता है इसलिये वे जीव इस शास्त्र में जिन्हें केवलनिश्चयावलम्बी कहा है ऐसे केवल निश्चयावलम्बी नहीं हैं तथा जिन्हें केवल व्यवहारावलम्बी कहा है ऐसे केवल व्यवहारावलम्बी नहीं हैं।

मत छोड़ो क्योंकि एक (व्यवहार) के बिना तो तीर्थ (मार्ग) का नाश हो जावेगा और दूसरे (निश्चय) के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायगा।

भावार्थ—चौथे से बारहवें गुणस्थान की अखण्ड पर्याय को व्यवहार, तीर्थ, उपाय, मोक्षमार्ग, मुख्योपचार रत्नत्रय, साधन इत्यादिक नामों से कहते हैं और तेरहवें गुणस्थान को तत्त्व, वस्तु, तीर्थफल, उपेय, मोक्ष, साध्य इत्यादिक नामों से कहते हैं। तीर्थ वह है जिससे तरते हैं—गमन करते हैं अर्थात् मोक्षमार्ग और तत्त्व उसका फल जो प्राप्त किया जाता है। तीर्थ में भी दो अंश हैं एक शुभ भाव एक शुद्ध भाव। शुभ भाग को व्यवहार तीर्थ या उपचार मोक्षमार्ग कहते हैं और शुद्धभाव को निश्चय तीर्थ या मुख्य मोक्षमार्ग कहते हैं। सो चौथे से बारहवें की पर्याय में दोनों अंश रहने से मार्ग अनेकांत रूप है और वस्तु के यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति तत्त्व है। इस अखण्ड मार्ग को व्यवहार कहते हैं क्योंकि चौथे से बारहवें की अखण्ड पर्याय वस्तु प्राप्ति पर नाश हो जाती है और तेरहवें गुणस्थान में प्रगट होने वाली वस्तु को तत्त्व कहते हैं क्योंकि वह त्रिकाल स्थायी चीज है। इस प्रकार उपाय और उपेय भाव की संधि है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि यदि जिनमत से आत्मप्राप्ति रूप फल चाहते हो तो हे भव्य जीवो ! इन दोनों को मत छोड़ो [कोई २ उपर्युक्त सूत्र में तीर्थ का भाव व्यवहार मोक्षमार्ग रूप शुभ विकल्प और तत्त्व का अर्थ वीतराग भाव रूप निश्चय मोक्षमार्ग कर देते हैं या मन घड़न्त कुछ का कुछ कर देते हैं। वह गलत है। जो अर्थ हमने ऊपर किया है वही अर्थ श्री अमृतचन्द्र आचार्य देव ने श्री समयसार के बारहवें सूत्र की टीका में किया है। कृपया शांति से विचारिये, ऐसी प्रार्थना है।]

व्यवहार निश्चय में हेयोपादेयता

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम् ।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥६॥

माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य ।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

अर्थ-मुनिराज अज्ञ जीवों को समझाने के लिये असत्यार्थ व्यवहार नय का उपदेश करते हैं परन्तु जो कोई मात्र व्यवहार नय को ही मानता एवं जानता है, उसे तो देशना देना ही व्यर्थ है। जैसे कि कोई सिंह को न जानता हो तो वह बिल्ली को ही सिंह मान बैठता है, इसी तरह जो निश्चय को न जानता हो तो वह व्यवहार को ही निश्चय समझ लेता है।

व्रतादि के छोड़ने से व्यवहार का हेयपना नहीं होता है—

प्रश्न—आप व्यवहारनय को असत्यार्थ और हेय कहते हैं तो फिर हम व्रत, शील, संयमादि व्यवहार कार्य किसलिये करते रहें? क्या इन सबका त्याग कर दें?

उत्तर—व्रत, शील, संयमादि का नाम व्यवहार नहीं है, परन्तु उसे मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है। ऐसी मान्यता तो त्यागने योग्य ही है। व्रत, शीलादि को बाह्य सहकारी होने से मोक्षमार्ग उपचार से कहा है परन्तु ये सब वस्तुयें पराश्रित हैं और सच्चा मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव है, जो स्वद्रव्याश्रित है। इसीलिये व्यवहार को असत्यार्थ एवं हेय समझना। इसलिये व्रतादिक को छोड़ने से कोई व्यवहार का हेयपना नहीं हो सकता।

निचली दशा की प्रवृत्ति में शुभभाव को छोड़ने का फल—

व्रतादि को छोड़ कर तू क्या करेगा? यदि हिंसादि रूप प्रवृत्ति करेगा तो महान अनर्थ होगा क्योंकि वहाँ तो उपचार रूप से मोक्षमार्ग की सम्भावना नहीं है। हिंसादि में प्रवृत्ति करने से तो उलटा नरकादि पावेगा। इसलिये ऐसा कहना अत्यन्त अयोग्य है। यदि व्रतादि परिणाम

को दूर करके वीतराग भाव परिणति को प्राप्त कर सके तो भले ही ऐसा कर परन्तु निचली दशा मे तो यह हो नहीं सकता। अत व्रतादि साधन छोडकर स्वच्छन्दी होना योग्य नहीं।

(श्री मोक्षमार्गप्रकाशक)

व्यवहार निश्चय के समझने की कुञ्जी[1], उससे प्रयोजन[2] तथा लाभ[3]

१ दो द्रव्यो मे व्यवहार ही प्रयुक्त होता है

जीव पुद्गल के गति आदि स्वतन्त्र कार्य में जो धर्म अधर्म आकाश तथा काल द्रव्य की गतिहेतुत्वादि सहायता मदद बलाधान आदि का कथन आता है। वह सब व्यवहार कथन ही है। उस का अर्थ केवल इतना ही है कि जीव पुद्गल अपने गति आदि कार्यों को तो स्वयं अपनी उस समय की स्वतन्त्र क्षणिक योग्यता से करते हैं। इनकी तो केवल उपस्थिति मात्र है जैसे हमारे चलने में सडक की उपस्थिति मात्र है। जो ऐसा मानते हैं कि धर्मादिक द्रव्य ही इनके कार्यों को कराते हैं वे दो द्रव्यों की कर्त्ताकर्म रूप एकत्व बुद्धि को दृढ करके मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। जो यह कहते हैं कि यदि ये न हों तो जीव पुद्गल इन कार्यों को न कर सकें वे भी भूलते हैं ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं है। यह बात ही भूल भरी है। जीव पुद्गल कार्य उनके बिना ही करते हैं। उनकी तो केवल उपस्थितिमात्र है। इससे अधिक और कुछ नहीं। जो इनकी उपस्थिति ही न माने वह एक धर्म का लोप करने वाला एकांती है। इसको न्याय तथा सिद्धांत मे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं तथा अध्यात्म में व्यवहार या व्यवहार नय कहते हैं।

जीव पुद्गल के परस्पर कार्यों के कथनों का भी उपयुक्त अर्थ ही है जैसे कर्म के उदय से राग होता है या जीव के राग से कर्म बनते

है। जीना, मरना, सुख, दुःख पुद्गलों का उपकार है। जीवों का परस्पर उपकार है। जीव ने कर्म बांधे। जीवों ने कर्मों का फल भोगा। कर्मों ने जीव को फल दिया। जीव के कारण वाणी बुली। आत्मा ने शरीर को चलाया हिलाया—जीव ने जीव की रक्षा की, दुःख दिया, मारा, दबाया, इत्यादिक जितना कथन शास्त्रों में जीव पुद्गल के परस्पर कार्य करने का आता है—सब उपस्थिति मात्र है। निमित्त का कथन है। उसका उन्हीं शब्दों में अर्थ समझना दो द्रव्यों की एकत्व बुद्धिरूप मिथ्यात्व है। इसको निमित्त मात्र—उपस्थिति—व्यवहार या व्यवहार नय कहते हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि कार्य तो स्वयं वह द्रव्य उस समय की अपनी स्वतन्त्र योग्यता से करता है। दूसरा द्रव्य तो उपस्थिति मात्र है। इससे अधिक और कुछ नहीं। पर ऐसा मेल अवश्य है।

प्रयोजन—उपर्युक्त का प्रयोजन विश्व की रचना दिखाना है।

लाभ—उपर्युक्त को न समझकर अज्ञानी मिथ्यात्वबुद्धि को दृढ़ करता है। ज्ञानी भिन्न भिन्न चतुष्टय का भान करके भेदविज्ञान को प्राप्त हो वीतरागी बनता है।

२—चतुष्टय दिखलाने में निश्चय ही प्रयुक्त होता है

जहाँ प्रत्येक द्रव्य का भिन्न २ चतुष्टय दिखलाना हो। उसकी सब पर्यायों का कर्ता उसी द्रव्य को कहना हो, वहाँ निश्चय ही प्रयुक्त होता है। इस दृष्टि से औदयिक-औपशमिक क्षायिक-क्षायोपशमिक चारों भावों का कर्ता जीव ही निश्चय से है। कर्मों की उदय आदि १० अवस्थाओं का कर्ता पुद्गल ही निश्चय से है। इस अपेक्षा राग का कर्ता निश्चय से जीव है। पं० टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक की सारी रचना इसी निश्चय नियम के आधार से की है। श्री प्रवचनसार की रचना इसी आधार से है। श्री प्रवचनसार की ४७ नयों की रचना भी इसी आधार से है। सब न्याय शास्त्रों तथा करणानुयोग शास्त्रों की रचना इसी निश्चय के आधार पर है। गुणपर्ययवद् द्रव्यं अथवा उत्पादव्यय

ध्रौव्ययुक्त सत् इसी नियम का सूत्र है। इसमें ध्रुव स्वभाव तथा पर्याय दोनों निश्चय हैं। दोनों में परस्पर मुख्यगौणपना हो सकता है।

प्रयोजन—प्रत्येक वस्तु का कार्य (कर्ता-कर्म) आदि से षट्कारक सब स्वतन्त्र रूप से दिखलाना इसका प्रयोजन है।

लाभ—अपने विभावों का कर्ता निश्चय से मैं हूं। ऐसा जानकर भव्य जीव उनके नाश का प्रयत्न करता है और उन्हें निकाल फेंकता है।

३ मोक्षमार्ग दिखलाने मे शुद्धभाव निश्चय शुभभाव व्यवहार ही प्रयुक्त होता है।

वैसे चतुष्टय की अपेक्षा शुभ भाव को निश्चय कहते हैं किन्तु जहां मोक्षमार्ग दिखलाना होता है—वहां केवल शुद्ध भाव को निश्चय कहते हैं—शुभ भाव को व्यवहार कहते हैं। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध में दूसरे द्रव्य को ही व्यवहार कहते हैं किन्तु यहां अपने शुभ भाव को भी व्यवहार कहते हैं।

प्रयोजन—शुद्ध भाव को निश्चय कहने का प्रयोजन यह है कि वह वास्तविक धर्म है। मोक्षमार्ग है। शुभ भाव को व्यवहार कहने का प्रयोजन यह है कि वह मोक्षमार्ग नहीं है किन्तु मोही जीवों का अज्ञान है। वास्तव में बन्ध भाव है।

लाभ—वीतरागभाव में मेरा हित है। उपादेय है। राग भाव में मेरा अहित है। हेय है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है।

४ अध्यात्म मे ध्रुव स्वभाव निश्चय-पर्यायें सब व्यवहार ही प्रयुक्त होता है।

अध्यात्म की दृष्टि यह है कि सामान्य (जिस को ध्रुव स्वभाव, गुण, द्रव्य, तत्त्व, वस्तु, पारिणामिक, जीवत्व, पंचमभाव आदि नामों से कहते हैं) केवल वह निश्चय है। यह शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि है। इसमें जीव की औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक चारों पर्यायें व्यवहार हैं।

रैंकिये चतुष्टय की दृष्टि में ये चारों निश्चय थे। मोक्षमार्ग की दृष्टि में शुद्धभाव (क्षायिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक) निश्चय थे और शुभभाव (औदयिक) व्यवहार थे। किन्तु यहां आकर चारों अविशेष रूप से व्यवहार हो गये। यह जयधम की दृष्टियों का कमाल है। भला इन दृष्टियों को जाने बिना कसे तत्त्व का मम पा सकता है। इसमें उत्पाद व्ययध्रौव्य में ध्रौव्य निश्चय—उत्पाद व्यय व्यवहार है। इसमें गुणपर्याय में गुण निश्चय—पर्याय व्यवहार है। [चतुष्टय की दृष्टि में उत्पाद-व्ययध्रौव्य तथा गुण पर्याय सब निश्चय हैं]। श्री समयसार तथा श्री पंचाध्यायी में मुख्यतया इसी व्यवहार निश्चय का प्रयोग किया गया है। ग्रंथराज श्री पंचाध्यायी की दूसरी पुस्तक में जो अस्ति नास्ति, नित्य-अनित्य, तत्-अतत् एक-अनेक, इन चार युगलों का वर्णन किया गया है उन को न्याय शास्त्र या सिद्धांत शास्त्र में तो निश्चय ही कहते हैं किन्तु यहां अध्यात्म में सामान्य को निश्चय विशेष को व्यवहार, नित्य धर्म को निश्चय-अनित्य को व्यवहार, तत् धर्म को निश्चय-अतत् को व्यवहार, एक धर्म को निश्चय-अनेक को व्यवहार कहते हैं। सिद्धान्त में इनमें से कभी किसी को मुख्यता किसी को गौणता करते हैं क्योंकि वहां द्रव्य पर्याय दोनों वस्तु के निश्चय धर्म हैं। जिसके कथन करने या ज्ञान करने का प्रयोजन होता है उसे मुख्य कर लेते हैं पर अध्यात्म में सदा द्रव्यस्वभाव ही मुख्य रहता है। पर्याय धर्म सदा गौण ही रहता है क्योंकि साधक को द्रव्य स्वभाव के आश्रय से पर्याय का ज्ञाता रहते हुये राग तोड़ कर केवली बनना है।

आत्मा का स्वरूप अनेकांत है—स्वभाव से शुद्ध, नित्य, पर्याय से अशुद्ध, अनित्य, उसमें पर्याय पर दृष्टि व्यवहार है और स्वभाव पर दृष्टि निश्चय है। दोनों को मानकर निश्चय का आदर करना अनेकांत है और उस निश्चय स्वभाव के बल से ही धर्म होता है।

निश्चय नय (द्रव्य स्वभाव) और व्यवहार नय (पर्याय स्वभाव) दोनों जानने योग्य हैं, किन्तु शुद्धता के लिये आश्रय करने योग्य एक निश्चय नय ही

है और व्यवहार नय कभी भी आश्रय करने योग्य नहीं है—यह सदा हेय ही है—ऐसा समझना। निश्चय नय का आश्रय करने का अर्थ यह है कि निश्चय नय के विषयभूत आत्मा के त्रिकाल चैतन्यस्वरूप का आश्रय करना और व्यवहार नय का आश्रय छोड़ना—उसे हेय समझना—इस का यह अर्थ है कि व्यवहार नय के विषयरूप विकल्प, परद्रव्य या स्वद्रव्य की अपूर्ण अवस्था की ओर का आश्रय छोड़ना। अध्यात्म में जो मुख्य है सो निश्चय और जो गौण है सो व्यवहार, यह कहा है, अत उसमें मुख्यता सदा निश्चय नय की ही है और व्यवहार सदा गौणरूप से ही है। साधक जीव की यही कक्षा या स्तर है। साधक जीव की दृष्टि की सतत् कक्षा की यही रीति है।

प्रयोजन—वस्तु में द्रव्य और पर्याय, नित्यत्व और अनित्यत्व इत्यादिक जो विरुद्ध धर्म स्वभाव है वह कभी दूर नहीं होता किन्तु जो दो विरुद्ध धर्म हैं—उनमें एक के आश्रय से विकल्प टूटता हटता है और दूसरे के आश्रय से राग होता है अर्थात् द्रव्य के आश्रय से विकल्प टूटता है और पर्याय के आश्रय से राग होता है। इसी से दो नयों में विरुद्धता है। अब द्रव्य स्वभाव की मुख्यता और अवस्था की—पर्याय की गौणता करके जब साधक जीव द्रव्य स्वभाव की तरफ झुक गया तब विकल्प दूर होकर स्वभाव मे अभेद होने पर ज्ञान प्रमाण हो गया। अब यदि वह ज्ञान पर्याय को जाने तो भी वहां मुख्यता तो सदा द्रव्य स्वभाव की ही रहती है। इस तरह जो निज द्रव्य स्वभाव की मुख्यता करके स्वसन्मुख झुकने पर ज्ञान प्रमाण हुआ—वही द्रव्य स्वभाव की मुख्यता साधक दशा की पूर्णता तक निरंतर रहा करती है। और जहाँ द्रव्यस्वभाव की मुख्यता है। वहां सम्यग्दर्शन से पीछे हटना कभी होता ही नहीं, इसलिये साधक जीव के सतत् द्रव्य स्वभाव की मुख्यता के बल से शुद्धता बढ़ते २ जब केवलज्ञान हो जाता है तब वस्तु के परस्पर विरुद्ध दोनों धर्मों को (द्रव्य और पर्याय को) एक साथ जानता है, किन्तु वहाँ अब एक की मुख्यता और दूसरे की गौणता करके झुकाव करना,

भुक्ता नहीं रहा। यहाँ सम्पूर्ण प्रमाण ज्ञान हो जाने पर दोनों नयों का विरोध दूर हो गया (अर्थात् नय ही दूर हो गया) तथापि वस्तु में जो विरुद्ध धर्म स्वभाव है वह तो दूर नहीं होता।

लाभ—वीतरागी साधक तथा केवली बनने की यही एक रीति है।

मुख्य गौण व्यवस्था (खास)

न्याय शास्त्रों में तथा सिद्धांत शास्त्रों में जहाँ केवल वस्तु का ज्ञान कराना इष्ट है—द्रव्य पर्याय-दोनों धर्मों का समान कोटि से ज्ञान कराते हैं। कभी द्रव्य को मुख्य—पर्याय को गौण करते हैं तो कभी पर्याय को मुख्यद्रव्य को गौण करते हैं जैसे जब जीव का पर्याय स्वरूप समझाना होता है तो १४ जीवसमास (शरीर नहीं) १४ मार्गणा, १४ गुणस्थान, संसारी-सिद्ध, औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भावों रूप ही जीव है ऐसा पर्यायमुख्य दृष्टि से कथन करते हैं और जब पर्याय को गौण करके द्रव्य का निरूपण करते हैं तो कहते हैं कि संसारी सिद्ध में पाये जाने वाला तो एक ही है। जो उत्पन्न होता है—वही तो नाश होता है। इसका प्रयोजन वस्तु के दोनों पहलुओं का समानकोटि रूप से ज्ञान कराना है। इसमें प्रयोजन यह सिद्ध होता है कि एक तो मुमुक्षु को अनादि काल की चली आई जो द्रव्यों की वस्तु त्व बुद्धि का नाश हो जाता है, दूसरे बौद्धवत् वस्तु को मात्र पर्यायरूप मानने वालों या सांख्यवत् वस्तु को मात्र द्रव्यरूप मानने वालों अर्थात् एकान्तमतों में बिना प्रयास उपेक्षा हो जाती है और वस्तु अनेकांतरूप जैसी है—वैसी लक्ष में आ जाती है। यह मुमुक्षु की प्रथम दशा है। सम्यक्त्व की ओर जाने का प्रथम पुरुषार्थ है।

इसके पश्चात् फिर गुरु महाराज अध्यात्म में शिष्य का प्रवेश कराने के लिए द्रव्यपक्ष को मुख्य और पर्याय को गौण करने का उपदेश देते हैं। क्योंकि पर्याय के लक्ष से राग की उत्पत्ति होती है जो बन्धर्म

का मूल है और द्रव्य स्वभाव की ओर ढलने से राग टूटता है—नाश होता है जो धर्म का मूल है। यही सम्यग्दर्शन (रत्नत्रय) उत्पन्न करने की रीति है। साधक में प्रारम्भ से (चौथे से) अंत तक (बारहवें तक) ही द्रव्य स्वभाव की मुख्यता और पर्याय की गौणता ही रहती है। द्रव्य स्वभाव की ओर ढलकर प्रमाणज्ञान (निर्विकल्प ज्ञान) का निर्माण करता रहता है और पर्याय का राग तोड़ता जाता है। इसी विधि से साधक का प्रारम्भ है और उसी में साधक का अन्त है। उसी प्रकार किसी दिन केवली होकर दोनों धर्मों का पूर्ण ज्ञाता द्रष्टा बन जाता है।

ध्यान रहे—अध्यात्म में पर्याय को व्यवहार कहने से कहीं वह अभूतार्थ नहीं है—द्रव्य में से चली नहीं जाती—द्रव्यपर्यायमय तो द्रव्य का अनादि अनन्त स्वभाव है। वस्तु सदा अनेकान्तरूप है (जैसा कि न्यायशास्त्रों में सिद्ध किया है) और अनेकान्त रूप ही होना चाहिए। उसे व्यवहार कहने का प्रयोजन केवल उसकी गौणता है और राग के तोड़ने रूप कार्य करने का उद्देश्य है। द्रव्य को मुख्य करके आश्रय किये बिना धर्म करने की तीन काल और तीन लोक में और कोई रीति केवलियों के ज्ञान में नहीं आई है।

एक बात और ध्यान रहे कि न्यायशास्त्रों तथा सिद्धान्तशास्त्रों का उद्देश्य केवल वस्तु का (सत् का) वास्तविक ज्ञान कराना है जैसा कि हमने भी ग्रंथराज श्री पंचाध्यायी की दूसरी पुस्तक में कराया है किन्तु सम्यग्दर्शन उत्पत्ति की रीति उन शास्त्रों में नहीं है। वह उनका विषय नहीं है। उनका विषय तो केवल अन्यमतों द्वारा माने गये वस्तु स्वरूप को मिथ्या सिद्ध करके सत्य अनेकान्त रूप वस्तु की सिद्धि करना है। बस इतने पर ही उनकी "इति श्री" हो जाती है। फिर ऐसी अनेकांतवस्तु का ज्ञान होने के पश्चात् अध्यात्म शास्त्र की आवश्यकता पड़ती है। वह यह बतलाता है कि द्रव्य पर्याय दोनों सत् के समान कोटि के दो धर्म रहते हुये भी एक के आश्रय से राग होता

है अतः वह व्यवहार है। एक के आश्रय से वीतरागता होती है अतः वह निश्चय है। यह सुगम आधीन है। इसका सविस्तार निरूपण हम अपनी प्रवचन की पचाध्यायी की सोलरी चौथी पुस्तक में खूब सविस्तार कर चुके हैं। सार यहा है कि सामान्य (ध्रुव स्वभाव) के आश्रय बिना तीन काल और तीन लोक मे कभी सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र-जो मुक्तिमार्ग है—वह उत्पन्न नही होता (प्रमाण श्री समयसार जी सूत्र १४३-१४४ टीका)। सारा श्री समयसार तथा श्री नियमसार शास्त्र, ये दो शास्त्र तो खालिस अनेकान्तात्मक वस्तु मे द्रव्य की मुख्यता और पर्याय की गौणता की विधि ही बतलाने के लिये लिखे गये हैं। मुमुक्षुओं को इस मुख्य गौण व्यवस्था की ओर खास लक्ष देना चाहिये। इसके समझे बिना तथा द्रव्यस्वभाव की ओर ढले बिना सब शास्त्र अभ्यास थोथा है। यही अध्यात्म का मूल है-मम है। समझ रे जीव समझ! इस बात के समझे बिना अनन्त काल यू ही चला गया है। अब अवसर आया है। यह हाथ से न चूक जाय ऐसा जानकर हे जीव—तुरन्त द्रव्य स्वभाव का आश्रय कर। उसके अन्तमुहूर्त मात्र के आश्रय से ही जीव केवल ज्ञान को पा लेता है। ऐसा द्रव्य स्वभाव का माहात्म्य है।

व्यवहार निश्चय-सार

निश्चय स्वद्रव्याश्रित है। जीव के स्वाभाविक भाव का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है। इसलिये उसके शब्दों का जसे का तसा अर्थ करना ठीक है। व्यवहार पर्यायाश्रित तथा परद्रव्याश्रित वर्तता है। जीव के औपपाधिक भाव, अपूर्ण भाव, वर्णादिक परवस्तु अथवा निमित्त का अवलम्बन लेकर चलता है इसलिये इसका शब्द के अनुसार अर्थ करना ठीक नहीं है। असत्य है। जसे जीव पर्याप्त, जीव अपर्याप्त, जीव सूक्ष्म, जीव बादर, जीव पचेन्द्रिय, जीव रागी यह व्यवहार कथन है। जीव चेतनमय है-पर्याय नहीं, जीव चेतनमय है—

अपर्याप्त नहीं, जीव चेतनमय है सूक्ष्म नहीं, जीव चेतनमय है रागी नहीं, ये निश्चय कथन सत्यार्थ है।

निश्चयनय स्वाश्रित है और व्यवहारनय पराश्रित है–निमित्ताश्रित है। उन दोनों को जानकर निश्चय स्वभाव के आश्रय से पराश्रित व्यवहार का निषेध करना सो अनेकान्त है परन्तु—(१) यह कहना कि कभी स्वभाव से धर्म होता है और कभी व्यवहार से भी धर्म होता है। यह अनेकान्त नहीं प्रत्युत एकान्त है—(२) स्वभाव से लाभ होता है और कोई देव शास्त्र गुरु भी लाभ करा देते हैं यों मानने वाला दो तत्त्वों को एक मानता है, अर्थात् वह एकान्तवाद मानता है। यद्यपि व्यवहार और निश्चय दोनों नय हैं, परन्तु उनमें से एक व्यवहार को मात्र 'है' यों मानना और दूसरे निश्चय को आदरणीय मानकर उसका आश्रय लेना, यह अनेकान्त है।

व्यवहारनय के पक्ष के सूक्ष्म आशय का स्वरूप और उसे दूर करने का उपाय

अनन्त प्राणियों को अनन्तकाल से अपने निश्चयस्वभाव की महिमा ज्ञात न होने से राग और विकल्प का सूक्ष्मपक्ष रह जाता है, उस व्यवहार के सूक्ष्मपक्ष का स्वरूप यहां बताया जाता है।

जीव को ज्ञान में परवस्तु, विकल्प तथा आत्मा का स्वभाव भी ज्ञात होता है। उसके ध्यान में यह आता है कि आत्मवस्तु, राग अथवा परवस्तु जैसी नहीं है, यह ध्यान में आने पर भी यदि राग में आत्मा का वीर्य रुक जाय तो व्यवहार का पक्ष रह जाता है। आत्मा के वीर्य को पर की ओर के झुकाव से पृथक् करके शुभराग का जो लक्ष होता

है, उस पर भी लक्ष न देकर स्वभाव के भान से वीर्य को उस शुभभाव में न लगाकर यदि शुभ से भी भिन्न आत्मस्वभाव का और प्रयत्न करे तो समझना चाहिये कि जीव ने निश्चय के आश्रय से व्यवहार का निषेध किया है।

आत्मा वर्तमान में ही ज्ञानादि अनन्त स्वभाव-युक्त का पिंड है, उसकी अवस्था में जो वर्तमान अशुभ अवस्था होती है, उसे छोड़ने को जीव का मन होता है, क्योंकि उसमें अशुभ से शुभ में भाव को युक्त करना वर्तमान मात्र के लिये ही वीर्य का काम है। सम्यग्दिगम्बर जन सन्मुख होकर पंचमहाव्रत का शुभराग तथा देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा करके उनकी कही हुई बात ध्यान में लाने पर भी सम्यग्दर्शन का अभाव होने से जीव के पुरुषार्थ से व्यवहार की पकड़ रह जाती है।

ज्ञान में शुभ और अशुभ दोनों का ध्यान करके जीव जीव को अशुभ में से शुभ में बदल देता है, परन्तु वह वर्तमान मात्र के शुभराग में भाव का जो भार है उसे लेकर यदि स्वभाव की ओर ढाल दे तो व्यवहार का पक्ष छूट जाय। आत्मा के स्वभाव में विकार नहीं है, विकार क्षणिक है और पर पदार्थ भिन्न हैं—यह ध्यान में लिया अर्थात् १–शरीर इत्यादि परमाणु मैं नहीं हूं, यह ज्ञान में धारण कर लिया। २–कर्म जड़ है वह आत्मा से भिन्न है यह शास्त्र से समझा और जो ३–अशुभ भाव होता है उसे अवस्था के लक्ष में रह रहकर दशा–अवस्थादृष्टि में ही रह रहकर अवस्था में अशुभ को बदल कर शुभ किया। शुभभाव, अशुभभाव और शुभाशुभ रहित आत्मस्वभाव को ध्यान में लिया तथा जो अशुभ होता है उसे आत्मवीर्य के द्वारा छोड़कर शुभ किया, किन्तु स्वभाव की ओर पुरुषार्थ का बल अल्प रहा, इसलिये निश्चय का आश्रय नहीं हुआ और न व्यवहार का पक्ष ही गया।

जीव को [illegible] पर वस्तुयें, शुभ तथा

यह, [illegible] स्वभाव ध्यान में आने पर

ओर से वीर्य का बल छूटकर स्वभाव के बल की ओर न जाय तो उस जीव के निश्चय का विषय जो स्वभाव है वह रुचिकर नहीं हुआ अर्थात् उसका वीर्य स्वभाव की ओर नहीं जाता, प्रत्युत व्यवहार में ही भटका रहता है।

अशुभ से शुभभाव करने में वीर्य वर्तमान मात्र के लिये ही है और शुभाशुभ रहित स्वभाव की रुचि के वीर्य का त्रैकालिक बल है। स्वभाव की रुचि का त्रैकालिक बल में शुभ के झुकाव में से वीर्य पृथक होकर जब स्वभाव की महिमा में उसका बल आता है तब त्रैकालिक की दृष्टि से सहज ही वर्तमान मात्र के लिये व्यवहार का निषेध हो जाता है, उसके ऐसा विकल्प नहीं होता कि निषेध करू । इस प्रकार निश्चयनय, व्यवहारनय का निषेध करता है।

जानने में 'राग मेरा स्वरूप नहीं है,' इस प्रकार व्यवहार का जो निषेध है सो भी राग है। मैं जीव हूँ-विकार मेरा स्वरूप नहीं है, इस प्रकार नव तत्वादिक के विचार के वर्तमान मात्र के भावों पर जो वीर्य का बल आ सकता है, परन्तु स्वभाव से, पराङ्मुख झुकाव से छूट कर अंतर स्वभाव में झुकने के लिये वीर्य की उन्मुखता काम न करे तो कहना होगा कि वह व्यवहार की रुचि में जमा हुआ है, किन्तु उसका झुकाव निश्चय स्वभाव की ओर नहीं है। जिस वीर्य का झुकाव निश्चय स्वभाव की ओर ढलता है उस वीर्य में वर्तमान का झुकाव (व्यवहार का पक्ष) अवश्य छूट जाता है, इसलिये अनन्त तीर्थंकरों ने निश्चय के द्वारा व्यवहार का निषेध किया है।

अभव्य और भव्य मिथ्यादृष्टि जीव यदि बहुत करे तो अशुभ को छोड़कर वैराग्य तक आता है, इस वैराग्य का शुभभाव भी वर्तमान मात्र के लिये है, वहाँ वर्तमान पर ज्ञान का लक्ष स्थिर हुआ है, वहाँ से छोड़कर त्रिकाली स्वभाव पर ज्ञान का लक्ष स्थिर कर रखू , इस प्रकार

स्वभाव की ओर वीर्य का बल जब तक न हो तब तक निश्चय का आश्रय नहीं होता और निश्चय के आश्रय के बिना व्यवहार का पक्ष नहीं छूटता। व्यवहार का आश्रय तो वह अभव्य जीव भी करता है जिसकी कभी मुक्ति नहीं होती। इसलिये निश्चय के आश्रय से ही मुक्ति होती है अतः निश्चयनय से व्यवहारनय निषेध करने योग्य ही है।

सच्चे देव, गुरु, शास्त्र क्या कहते हैं ? इसका विचार ज्ञान में आता है, तथा पंच महाव्रतादि के विकल्परूप जो व्यवहार उठता है उसे भी ज्ञान जानता है—किन्तु उस रागरूप व्यवहार से निश्चय स्वभाव की अधिकता (पृथक्त्व) जब तक दृष्टि में नहीं बढ़ती तब तक निश्चय स्वभाव में वीर्य का बल स्थिर नहीं होता और निश्चय स्वभाव के आश्रय के बिना निश्चय सम्यक्त्व नहीं होता। निश्चय सम्यक्त्व के बिना व्यवहार का निषेध नहीं होता। इस प्रकार जीव के व्यवहार का सूक्ष्म पक्ष रह जाता है।

'राग वर्तमानमात्र के लिये विकार है, प्रत्येक अवस्था में वह राग बदलता जाता है, और उस विकार के पीछे निर्विकार स्वभाव को धारण करने वाला द्रव्य ध्रुव है,' इस प्रकार विकल्प के द्वारा जीव के ध्यान में आता है, किन्तु जब तक त्रैकालिक स्वभाव वीर्य को लगा कर अरागी निश्चय स्वभाव का बल नहीं आता तब तक व्यवहार का निषेध नहीं होता, और व्यवहार के निषेध के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता।

अज्ञानी के व्यवहारनय के पक्ष का सूक्ष्म अभिप्राय रह जाता है, वह केवलिगम्य है, छद्मस्थ के वह कदाचित् दृष्टिगोचर नहीं होता। वह अभिप्राय कैसे रह जाता है, इस सम्बन्ध में यहां कथन चल रहा है।

आत्मा सर्वथा ज्ञानस्वभावी, अकेला, ज्ञायक, शान्तस्वरूपी है ऐसे स्वभाव के जानते हुये भी, और राग का ध्यान आते हुये भी स्वभाव की में वह बात नहीं बैठती, इसलिये

बाहर भटक जाता है। यदि स्वभाव मे यह बात जम जाय कि बहिर्मुख भाव के बराबर मैं नहीं हूं, तो उसका वीर्य अधिक होकर निश्चय में ढल जाता है, और निश्चय में वीर्य ढल गया कि वहाँ व्यवहार का निषेध हो जाता है।

अभव्य जीवों की तथा मिथ्यादृष्टि भव्यजीवों को स्वभाव का ध्यान आने पर भी स्वभाव की महिमा नहीं आती। ध्यान में आता है इसका अर्थ यहां पर सम्यक्ज्ञान से आने की बात नहीं है, किन्तु ज्ञानावरण के क्षयोपशम की प्रगटता से इस बात का ध्यान आता है। ग्यारह अङ्ग के ज्ञान में सब बात आ जाती है कि–आत्मा का स्वभाव त्रिकाल है–राग क्षणिक है, किन्तु रुचि का वीर्य शुभ की ओर से नहीं हटता। बहुत गम्भीर मे स्वभाव की माहात्म्यदशा में वीर्य को लगाना चाहिये। यह वह स्वयं नहीं करता इसलिये व्यवहार का पक्ष रह जाता है।

यहां पर अभव्य की बात तो मात्र दृष्टांत के रूप में कही है, किन्तु सभी मिथ्यादृष्टि जीव कहीं न कहीं व्यवहार के पक्ष में अटक रहे हैं, इसीलिये उन्हें निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता। जैन साधु होकर और सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को मानकर वे क्या कहते हैं यह ध्यान में भी लिया, किन्तु वर्तमान भाव के झुकाव से (अवस्था के लक्ष में रुक कर, वीर्य बदलता है, उस वीर्य को वर्तमान से हटाकर त्रिकाली स्वभाव की ओर नहीं लगाता। वर्तमान पर्याय को वर्तमान से हटाकर त्रैकालिकता की ओर लगाये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसलिये सर्वज्ञ भगवान ने सदा निश्चय के आश्रय से व्यवहार का निषेध किया है।

जीव को सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा इत्यादि शुभरागरूप व्यवहार का पक्ष है–वर्तमान मात्र के भाव का आग्रह है, उसकी जगह यदि त्रैकालिकता की ओर वीर्य का बल लगाया जाय तो निश्चय का आश्रय प्राप्त हो, किन्तु त्रैकालिकता की ओर वीर्य का बल नहीं है, अर्थात् वीर्य पर में (पराधीन व्यवहार में) ही अटक जाता है।

बाह्य के त्याग अथवा प्रवृत्ति पर सम्यग्दर्शन अवलम्बित नहीं है, किन्तु वह निश्चय स्वभाव पर आश्रित है। यदि जीव स्वभाव की ओर की रुचि में वीर्य का बल नहीं लगाता तो उसके व्यवहार का पक्ष नहीं छूटता और सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्दर्शन अन्तरंग स्वभाव की वस्तु है।

त्रैकालिक और वर्तमान इन दोनों पहलुओं का ध्यान आने पर भी त्रैकालिक स्वभाव की रुचि की ओर नहीं झुकता, किन्तु वर्तमान पर्याय की रुचि की ओर उन्मुख होता है। "यह स्वभाव है-यह स्वभाव है" इस प्रकार यदि स्वभाव रुचि की ओर झुके तो वर्तमान पर जो बल है वह तत्काल छूट जाय, किन्तु त्रिकाली स्वभाव को "यह है" इस प्रकार रुचि में लेने के बदले वर्तमान शुभराग में 'यह राग है' इस प्रकार वर्तमान पर उसका भार रहता है, इसलिये त्रिकाल मात्र ज्ञायक स्वभाव में वीर्य का झुकाव अन्तरंग में परिणमित नहीं होता, अर्थात् निश्चय का आश्रय नहीं होता और व्यवहार का आश्रय नहीं होता और व्यवहार का पक्ष नहीं छूटता। व्यवहार का पक्ष मिथ्यात्व है।

आत्मा का जो वीर्य करता है वह तो अवस्था रूप (वर्तमान) ही है, परन्तु उस वर्तमान वीर्य को वर्तमान के लक्ष पर (अवस्था-दृष्टि में) स्थिर करे और त्रैकालिक अन्तरङ्ग स्वभाव की ओर वीर्य को प्रेरित न करे तो विकल्प नहीं टलता और सम्यग्दर्शन नहीं होता।

प्रत्येक जीव के वर्तमान अवस्था में वीर्य का कार्य तो होता ही रहता है किन्तु उस वीर्य को कहाँ स्थापित करना चाहिये यह भान न होने से जीव के व्यवहार का पक्ष नहीं छूटता। "मैं एक ज्ञायकभाव हूं, मैं वर्तमान अवस्था के बराबर नहीं हूं, किन्तु अधिक त्रिकाल शक्ति का पिण्ड हूं" इस प्रकार अपने निश्चय स्वभाव की रुचि से

को स्थापित करना चाहिए—एकाग्र करना चाहिये। यदि निश्चय स्वभाव की ओर के बल मे ओर रुचि मे वीर्य को न जोड़े तो वह वीर्य व्यवहार के पक्ष म जुड़ जाता है, और उसके व्यवहार का सूक्ष्म पक्ष नहीं छूटता।

जब व्यवहार के पक्ष से छूटकर वीर्य में ज्ञायक स्वभाव का बल स्थापित किया जाता है तब भी व्यवहार का ज्ञान तो (गौणरूप में) रहता ही है, कहीं ज्ञान छूट नहीं जाता, क्योंकि वह तो सम्यक्ज्ञान का अंश है। व्यवहार का ज्ञान छूटकर निश्चय की दृष्टि नहीं होती। सम्यग्दर्शन के होने पर व्यवहार का ज्ञान तो रहता है, किन्तु उस पर से दृष्टि उठकर स्वभाव की ओर एकाग्र हो जाती है। इस प्रकार निश्चय के आश्रय के समय व्यवहार का पक्ष छूट जाने पर भी ज्ञान तो सम्यक् ज्ञानरूप अनेकान्त ही रहता है, किन्तु जब ज्ञान सर्वथा व्यवहार की ओर ढलता है तब निश्चय का आश्रय किंचित् मात्र भी न होने से वह व्यवहार का पक्षवाला ज्ञान मिथ्यारूप एकान्त है। सम्यग्दर्शन होने के बाद निश्चय का आश्रय होने पर भी जब तक अपूर्ण भूमिका है तबतक व्यवहार रहता है,—किन्तु निश्चयाश्रित जीव को उस ओर आसक्ति नहीं होती, उसके वीर्य का बल व्यवहार की ओर नहीं ढलता।

सच्चे देव शास्त्र, गुरु की पहचान, नवतत्व का ज्ञान, ब्रह्मचर्य का पालन तथा पूजा, व्रत, तप और भक्ति—इत्यादि के करने पर भी जीव के मिथ्यात्व क्यों रह जाता है? क्योंकि जीव 'यह वर्तमान परिणाम ही मैं हूं और उसी से मुझे लाभ है,' इस प्रकार वर्तमान पर ही लक्ष को स्थिर करके उसमें अटक रहा है, और त्रैकालिक एकरूप निरपेक्ष स्वभाव की ओर नहीं गया, इसीलिये मिथ्यात्व रह गया है। यदि जीव वर्तमान के ऊपर का लक्ष छोड़कर त्रैकालिक स्वभाव को लक्ष में ले तो सम्यग्दृष्टि होता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन का आधार (आश्रयभूतवस्तु) त्रैकालिक स्वभाव है, वर्तमान प्रवृत्त पर्याय के आधार पर सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता।

निश्चय-अखंड अभेद स्वभाव की ओर जाते हुये बीच में जो विकल्पादिरूप व्यवहार आवे उसके लिये खेद होना चाहिए, ऐसा न करके जो उसके प्रति उत्साह होता है उसे स्वभाव के प्रति आदर नहीं रहता। अर्थात् वह मिथ्यात्वी ही रहता है। निश्चय स्वभाव की ओर के वीर्य का उल्लास होने के बदले व्यवहार में जिसका वीर्य उल्लसित होता है, उसके स्वभाव की ओर का उल्लसित भाव पराबलम्बित पड़ा रहता है। इसलिये जीव के व्यवहार का पक्ष दूर नहीं होता।

व्यवहार की रुचिवाला जीव भगवान की दिव्य ध्वनि का उपदेश सुनकर उसमें से भी व्यवहार की ही रुचि को पुष्ट करता है। "भगवान की वाणी में निश्चय स्वभाव का और व्यवहार का-दोनों का मेल कर दिखाया है, अर्थात् दोनों नयों को समान स्तर पर रखा है,' यों मानकर वह अज्ञानी जीव अपने व्यवहार के हठ को दृढ़ करता है, परन्तु भगवान की वाणी तो निश्चय का आश्रय करके व्यवहार का निषेध करने को कहती है। इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों के बीच परस्पर विरोध पाया जाता है, इसे वह अज्ञानी नहीं जानता, और न उधर रुचि ही करता है तथा व्यवहार का निषेध करके निश्चय में वीर्य को उल्लसित भी नहीं करता। निश्चय के आश्रय का उल्लास न होने से बीच में व्यवहार आता है, उसका खेद न करके कह दिया करता है कि 'व्यवहार तो बीच में आयेगा ही ?' और इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के व्यवहार की गहरी, सूक्ष्म मिठास विद्यमान रहती है, इसलिये वह अपने स्वभाव में उल्लसित होकर सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता।

प्रश्न—क्या ऐसे एकांत निश्चय नहीं हो जाता ?

उत्तर—नहीं, इसी में सच्चा अनेकांत है। निश्चय स्वभाव और राग दोनों को जानकर जब वीर्य के बल को निश्चय स्वभाव में-लगा होता है तब ज्ञान में गौण रूप से यह ध्यान तो होता ही

मे विकार होता है। स्वभाव की ओर लाने वाला जीव पर्याय की अपेक्षा से अपने को केवलज्ञानी नहीं मानता। इस प्रकार ज्ञान में निश्चय और व्यवहार दोनों को जानकर निश्चय का आश्रय और व्यवहार का निषेध किया है, और यही अनेकांत है। दोनों पक्षों को जानकर एक में आरूढ़ और दूसरे में अनारूढ़ हुआ-अर्थात् निश्चय को ग्रहण किया और व्यवहार को छोड़ा, बस यही अनेकांत है। किन्तु यदि निश्चय और व्यवहार दोनों को आश्रय करने योग्य माने तो वह एकांत है। (दो नय परस्पर विरोधरूप है, इसलिये दोनों का आश्रय नहीं हो सकता। जीव जब निश्चय का आश्रय करता है तब उसके व्यवहार का आश्रय छूट जाता है और जब व्यवहार के आश्रय से अटक जाता है तब उसके निश्चय का आश्रय नहीं होता। ऐसा होने से जो दोनों नयों को आश्रय योग्य मानते हैं वे दोनों नयों को एकमेक मानने के कारण एकांतवादी हैं।) राग सम्यग्दर्शन में सहायता न करे किन्तु 'राग मुझे सहायता नहीं करता' ऐसा विकल्प भी सहायता न करे तब इस प्रकार राग से मुक्त होकर जब जीव स्वभाव की ओर ढलता है तब मुख्य स्वभाव की (निश्चय की) दृष्टि होती है और अवस्था गौण हो जाती है। इस प्रकार निश्चय को मुख्य और व्यवहार को गौण करने से ही वह नय कहलाता है।

जिसे व्यवहार का पक्ष है वह जीव एकांत व्यवहार की ओर ढल जाता है, इसलिये वह निश्चय स्वभाव का तिरस्कार करता है। मात्र वर्तमान की ओर उन्मुखता में इतना अधिक बल नहीं है कि वह विकल्प को तोड़कर स्वभाव का दर्शन कराए। यदि दृष्टि में मात्र निश्चय स्वभाव पर भार न दे तो व्यवहार को गौण करके स्वभाव की ओर नहीं झुक सकता और सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। यदि वर्तमान में होने वाले विकारभाव की ओर के बल को क्षीण करके स्वभाव की ओर बल को लगाये तो अवस्था में स्वभावरूप कार्य हो सकता है।

ज्ञान और वीर्य की दृढ़ता स्वभाव की ओर ढले तो वह निश्चय की मुख्यता हुई और रागादि विकल्प को जानकर भी उस ओर न ढला–उसे मुख्य न किया तो वहां व्यवहारनय का निषेध है। वहाँ भी व्यवहार का ज्ञान है और उस ज्ञान में व्यवहार गौणरूप से विद्यमान है।

ज्ञान और वीर्य के बल से स्वभाव की ओर जो मुख्यता होती है उस मुख्यता का बल वीतरागता और केवलज्ञान होने तक बना रहता है, बीच में भले ही व्यवहार आवे, किन्तु कभी उसकी मुख्यता नहीं होगी। छठे गुणस्थान तक राग रहेगा तथापि दृष्टि में कभी भी राग की मुख्यता नहीं होगी। त्रकालिक स्वभाव ही मुख्य है अर्थात् दृष्टि के बल से वह निश्चय स्वभाव की ओर ढलते ढलते और रागरूप व्यवहार को तोड़ते २ सम्पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान हो जायगा। केवलज्ञान होने के बाद सम्पूर्ण नय पक्ष का ज्ञाता होने से वहां न कोई मुख्य रहता है और न गौण, और न कोई विकल्प ही रहता है।

यह बतलाता है कि नव तत्वों की श्रद्धा और ग्यारह अङ्ग का ज्ञान होने पर भी जीव का सम्यग्दर्शन कहाँ रुक जाता है। त्रकालिक और वर्तमान इन दोनों को क्षायोपशमिक ज्ञान से जाना तो अवश्य किन्तु वर्तमान की दृढ़ता वाला त्रकालिक स्वभाव की ओर झुक नहीं सकता और त्रकालिक स्वभाव की ओर उन्मुख होने वाला प्रथम दोनों का विचार करके स्वभावोन्मुख होता है। जो स्वभाव की दृढ़ता प्राप्त कर लेता है वह व्यवहार को फीका कर देता है। यद्यपि अभी व्यवहार का सर्वथा अभाव नहीं हुआ, किन्तु जैसे २ स्वभाव की ओर ढलता जाता है वैसे २ व्यवहार का अभाव होता जाता है।

वस्तु को मात्र ज्ञान के ध्यान में लेने से ही सम्यग्दर्शन नहीं हो जाता, किन्तु ज्ञान के साथ वीर्य के उस ओर के बल की आवश्यकता है। यहाँ ज्ञान और वीर्य दोनों के बल को स्वभावोन्मुख करने की बात

है। शुभ राग से मेरा स्वभाव भिन्न है, इस प्रकार का जो ज्ञान है उस ओर वीर्य को ढालते ही तत्काल सम्यग्दर्शन हो जाता है। यदि स्वभाव की रुचि करे तो वीर्य स्वभाव की ओर ढले, किन्तु जिसके राग की पुष्टि और रुचिमात्र है उसका व्यवहार की ओर झुकाव दूर नहीं होता। जहां तक मान्यता में निरपेक्ष स्वभाव नहीं रुचता और राग रुचता है—वहां तक एकांत मिथ्यात्व है।

जीव अशुभ भाव को दूर करके शुभ भाव तो करता है परन्तु वह शुभभाव में धर्म मानता है, यह स्थूल मिथ्यात्व है। जीव अशुभ को दूर करके शुभभाव करता है और शास्त्रादि के ज्ञान से यह भी समझता है कि शुभ राग से धर्म नहीं होता, तथापि मात्र चैतन्यस्वभाव की ओर का वीर्य न होने से उसके मिथ्यात्व रह जाता है। मात्र चैतन्यस्वभाव की ओर के बल से वर्तमान की ओर से हटना चाहिये, यही दर्शनविशुद्धि है। यहाँ ज्ञान की अगम्यता अथवा कषाय की मन्दता या त्याग पर भार नहीं दिया किन्तु दर्शनविशुद्धि पर ही सम्पूर्ण भार है।

जैसे किसी से सलाह पूछी और उसके कथन को ध्यान में भी रखा, परन्तु उसके अनुसार मानने के लिये तैयार नहीं होता। तात्पर्य यह है कि उस बात पर ध्यान तो दिया किन्तु तदनुसार आचरण नहीं किया। इसी प्रकार शास्त्र के कथन से यह तो जान लिया कि निश्चय के आश्रय से मुक्ति और व्यवहार के आश्रय से बंध होता है, इस प्रकार उस सलाह को ध्यान में लेकर भी उसे नहीं माना। शास्त्र कथित दोनों पहलुओं को ध्यान में तो लेता है परन्तु मानता वही है जो उसकी रुचि में होता है, और रुचि तो अपने वीर्य से होती है, जिसमें भगवान अथवा शास्त्र का मातृत्व काम नहीं आता।

उसे दिव्यध्वनि का आशय तो ध्यान में आ जाता है कि 'भगवान यों कहना चाहते हैं' किन्तु उस ओर वह रुचि नहीं करता। क्षायोपशम

मात्र से मात्र धारणा से ध्यान करता है, परन्तु वह यथार्थतया रुचि से नहीं समझता। यदि यथार्थतया रुचि से समझे तो सम्यग्दर्शन हुये बिना न रहे।

स्वभाव की बात उस वर्तमान विकल्प के राग से भिन्न होती है। स्वभाव की रुचि के साथ जो जीव स्वभाव की बात को सुनता है वह उस समय राग से आंशिक भिन्न होकर सुनता है। यदि स्वभाव की बात सुनने सुनते ऊबता जाये अथवा यह विचार आये कि यह तो कठिन काम है, और इस प्रकार स्वभाव की ओर अरुचि मालूम हो तो समझना चाहिए कि उसे स्वभाव की अरुचि और राग की रुचि है, क्योंकि वह यह मानता है कि राग में मेरा वीर्य काम कर सकता है, और रागरहित स्वभाव में नहीं कर सकता। यह भी उसे वर्तमान मात्र के लिये व्यवहार का पक्ष है। स्वभाव की बात सुनकर उस ओर महिमा लाकर इस प्रकार स्वभाव की ओर वीर्य का उल्लास होना चाहिये कि 'अहो! यह तो मेरा ही स्वरूप बतला रहे हैं'। किन्तु यदि यों माने कि 'यह काम मुझसे नहीं होगा' तो समझना चाहिये कि वह वर्तमान मात्र के लिये राग के चक्कर में पड़ गया है, और राग से पृथक् नहीं हुआ। हे भाई! यदि तूने यह माना कि तुझसे राग का कार्य हो सकता है और राग से अलग होकर राग रहित ज्ञान का कार्य जो कि तेरा स्वभाव ही है तुझ से नहीं हो सकता, तो समझना चाहिए कि त्रैकालिक स्वभाव की अरुचि होने से तुझे सूक्ष्मरूप में राग के प्रति मिठास है—व्यवहार की पकड़ है, और यही कारण है कि सम्यग्दर्शन नहीं होता।

जहां रागरहित ज्ञायकस्वभाव की बात आये वहां यदि जीव को ऐसा लगे कि 'यह काम कैसे होगा ?' तो समझना चाहिये कि उसका वीर्य व्यवहार में अटक गया है, अर्थात् उसे स्वभाव की दृष्टि से सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता। जो सूक्ष्म ज्ञानस्वभाव है उसकी मिठास छूटी कि राग की मिठास आ गई। जीव कभी निश्चय स्वभाव की अपूर्व

बात को नहीं समझा और उसकी किसी न किसी प्रकार से व्यवहार की रुचि रह गई है।

पं० जयचन्द्र जी श्री समयप्राभृत मे कहते हैं कि प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही विद्यमान है, और इसका उपदेश भी बहुधा सभी प्राणी परस्पर करते हैं, तथा जिनवाणी में शुद्ध नय का हस्तावलम्बन समझ कर व्यवहार का उपदेश बहुत किया है; किन्तु इसका फल संसार ही है। शुद्धनय का पक्ष कभी नहीं आया और इसका उपदेश भी विरल है-क्वचित् २ है, इसलिये उपकारी श्रीगुरु ने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि-"शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है, इसका आश्रय लेने से सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है। इसे जाने बिना जीव जब तक व्यवहार में मग्न है तब तक आत्मा के ज्ञान-श्रद्धारूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता।"

आत्मा के निश्चय स्वभाव की बात करने पर व्यवहार गौण हो जाता है, वहाँ यदि स्वभाव के कार्य के लिये वीर्य नकार करे और व्यवहार के लिये रुचि करे तो समझना चाहिये कि उसे स्वभाव की रुचि नहीं है, और स्वभाव की ओर की रुचि के बिना जीव स्वभाव में काम नहीं कर सकता, अर्थात् उसकी व्यवहार को दृढ़ता दूर नहीं होती।

यह निश्चय व्यवहार का निषेध करता है यह बात ज्ञानियों ने बारम्बार कही है, उसमें व्यवहार के स्वरूप का ज्ञान भी उसी के साथ आ जाता है। निश्चयनय जिस व्यवहार का निषेध करता है वह व्यवहार कौन सा है? कुदेव आदि की मान्यतारूप जो ज्ञान है, सो मिथ्यात्व मोचक है, उसका तो निषेध ही है, क्योंकि उसमें व्यवहारत्व भी नहीं है। कुदेव आदि की मान्यता को छोड़कर सच्चे देव, गुरु, शास्त्रों में जो कहा है, उसके ज्ञान को व्यवहार कहा गया है, और वह ज्ञान भी

निश्चय सम्यग्दर्शन का मूलकारण नहीं है, इसलिये निश्चय स्वभाव के बल से उस व्यवहार का निषेध किया गया है। यहां पर गृहीतमिथ्यात्व की तो बात ही नहीं है, किन्तु यहां पर अगृहीत, सूक्ष्म मिथ्यात्वदशा में जो व्यवहार है उसका निषेध है। जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी कुदेव आदि को सत्यरूप में मानता है वह ज्ञान तो व्यवहार से भी बहुत दूर है। जिन निमित्तों की ओर से वृत्ति को उठाकर स्वभाव में ढलना होता है वे निमित्त क्या हैं, इसका जिसे विवेक नहीं है, उसे स्वभाव का विवेक तो हो ही नहीं सकता। और यह भी नियम नहीं है कि जो सच्चे निमित्तों की ओर झुकता है उसे स्वभाव का विवेक होता ही है। किन्तु ऐसा नियम है कि जो निश्चय स्वभाव का आश्रय लेता है उसे सम्यग्दर्शन अवश्य होता है इसलिये निश्चयनय से व्यवहारनय का निषेध है।

शास्त्र की ओर का विकल्प से जो ज्ञान है सो व्यवहार है। उस ज्ञान की ओर से वीर्य को हटाकर उसे स्वभाव की ओर लगाना होता है। सत् के निमित्त की ओर के भाव से जैसा पुण्य-बंध होता है वैसा पुण्य अन्य निमित्तों के झुकाव से नहीं बंधता, अर्थात् लोकोत्तर पुण्य भी सच्चे देव, गुरु, शास्त्र के विकल्प से होता है। किन्तु वह ज्ञान अभी पर की ओर उन्मुख है, निश्चय स्वभाव की ओर उन्मुख नहीं है, इसलिये उसका निषेध है। जैसे पागल मनुष्य का ज्ञान विपरीत होता है इसलिये उसका माता पिता को माता के रूप में जानने का जो ज्ञान है वह भी अयथार्थ है, इसी प्रकार अज्ञानी का स्वभाव की ओर का निर्णय रहित ज्ञान दोषित हुये बिना नहीं रह सकता।

सर्वज्ञ भगवान के कथन की ओर जो लक्ष्य है वह भी पर की ओर का झुकाव है। वीतराग शास्त्र में कथित जीवादि को विकल्प से जो सच्ची श्रद्धा है सो शुभ कारण है, भेद का और पर का लक्ष्य है। इसका ऐसा कारण

जीव निमित्त से अविरुद्ध है किन्तु निमित्त की ओर से हटकर अभी स्वभाव की ओर नहीं झुका उसे निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है।

आचारांग इत्यादि सच्चे शास्त्र जीवाजीवादिक नवतत्वों का स्वरूप और एकेन्द्रियादिक छह जीविकायों का प्रतिपादन वीतराग जिन-शासन के अतिरिक्त अन्य किसी में तो है ही नहीं, परन्तु वीतराग जिन-शासन में कहे अनुसार शास्त्रों का सच्चा ज्ञान करे, जीवादिक नवतत्वों की यथार्थ श्रद्धा करे और छह जीविकायों की मानकर उनकी दया पालन करे तो वह भी पुण्य का कारण है। और उसे व्यवहार दर्शन, ज्ञान, चारित्र (जो जीव निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करेगा उसके लिये) कहा जाता है, किन्तु परमार्थदृष्टि उसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र के रूप में स्वीकार नहीं करती, क्योंकि जिनशासन के व्यवहार तक आना सो धर्म नहीं है, किन्तु यदि निश्चय आत्मस्वभाव की ओर ढलकर उस व्यवहार का निषेध करे तो वह धर्म है। इस प्रकार निश्चयनय व्यवहार का निषेध करता है।

इस व्याख्यान में यह बताया है कि अज्ञानी को व्यवहार की सूक्ष्म पकड़ कहाँ रह जाती है ? तथा निश्चयनय का आश्रय कैसे होता है ? अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवों को मिथ्यात्व क्योंकर रह जाता है तथा सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट होता है यह बताया है।

इस विषय से सम्बन्धित कथन मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी आता है वह इस प्रकार है —"सत्य को जानता है तथापि उसके द्वारा अपना अयथार्थ प्रयोजन ही सिद्ध करता है इसलिये वह सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता।"

ज्ञान के क्षयोपशम में निश्चय-व्यवहार दोनों का ध्यान होता है, तथापि अपने बल को निश्चय की ओर ढालना चाहिये; उसकी जगह व्यवहार की ओर ढालता है इसलिए व्यवहार का पक्ष रह जाता है।

अज्ञानी व्यवहार-व्यवहार करता है और ज्ञानी निश्चय के आश्रय से व्यवहार का निषेध ही निषेध करता है।

"श्री प्रवचनसार जी में कहा गया है कि—जिसे ऐसा आगम ज्ञान हो गया है कि जिसके द्वारा समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् जानता है, और यह भी जाना है कि इनका जानने वाला मैं हूं, परन्तु मैं ज्ञान स्वरूप हूं इस प्रकार अपने को पर द्रव्य से भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य अनुभव नहीं करता" अर्थात् स्व-पर को जानता हुआ भी अपने निश्चय स्वभाव की ओर नहीं झुकता, किन्तु व्यवहार की पकड़ में अटक जाता है, इसलिये वह कार्यकारी नहींहै, क्योंकि वह निश्चय का आश्रय नहीं लेता।

एकांत निश्चय व्यवहाराभासी का स्वरूप

कोई जीव ऐसा मानते हैं कि जिनमत में निश्चय और व्यवहार दो नय कहे हैं—इसलिये हमें उन दोनों को अंगीकार करना चाहिये। ऐसा विचार कर, जिस प्रकार केवल निश्चयाभास के अवलम्बियों का कथन किया था तन्नुसार तो वे निश्चय को अंगीकार करते हैं औरजिस प्रकार केवलव्यवहाराभास के अवलम्बियों का कथन किया था तदनुसार व्यवहार को अंगीकार करते हैं। यद्यपि इस प्रकार अंगीकार करने में दोनों नयों में परस्पर विरोध है, तथापि करें क्या? दोनों नयों का सच्चा स्वरूप तो भासित हुआ नहीं और जिनमत में दो नय कहे हैं उन में से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, इसलिये भ्रमपूर्वक दोनों नयों का साधन साधते हैं। उन जीवों को भी मिथ्यादृष्टि जानना।

अब उनकी प्रवृत्ति की विशेषता दर्शाते हैं—

अंतरंग में स्वयं तो निर्धार करके यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग को जाना नहीं है परन्तु जिन आज्ञा मानकर निश्चय व्यवहार रूप दो प्रकार के मोक्षमार्ग मानते हैं। अब मोक्षमार्ग तो कहीं दो हैं नहीं मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। जहां सच्चे

मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपण किया है वह निश्चय मोक्षमार्ग है, और जहां मोक्षमार्ग तो है नहीं किन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहें वह व्यवहार मोक्षमार्ग है, क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सच्चा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार। इसलिये निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार से मोक्षमार्ग जानना। परन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग है तथा एक व्यवहार मोक्षमार्ग है इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। पुनश्च वे निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानते हैं वह भी भ्रम है, क्योंकि निश्चय और व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है।

"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः"

ज्ञान का अर्थ 'सम्यग्ज्ञान' है और क्रिया का अर्थ 'शुद्ध आत्मानुभव' किया है। इस विषय में श्री समयसार नाटक सर्वविशुद्धिद्वार में इस प्रकार कहा है —

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्धज्ञान दिग दौर।
मुक्ति पंथ साधन यहै वाग्जाल सब और ॥१२६॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, शुद्धज्ञान और शुद्धानुभव क्रिया मोक्ष का मार्ग और साधन है, दूसरा सब वाग्जाल है। इससे सिद्ध हो गया कि इस स्थान पर क्रिया का अर्थ ज्ञान में स्थिरता और शुद्धात्मानुभव किया है। शुभाशुभ भाव क्रिया या शरीर की क्रिया नहीं। 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' इस सूत्र में ज्ञान का अर्थ सम्यग्ज्ञान है और क्रिया का अर्थ है उस ज्ञान की ज्ञान में स्थिरता रूप वर्तमान में होने वाली अवस्था। इसी तरह से सर्वविकार का नाश होता है। उस पवित्रता का नाम है मोक्ष, अर्थात् विकार (अपवित्रता) से मुक्ति। ऊपर के नियम से सिद्ध हुआ कि आत्मा का ज्ञान और जड शरीर की क्रिया इन दोनों के

एकत्र होने से मोक्ष होता है ऐसा किसी ज्ञानी ने स्वीकार नहीं किया है।

ज्ञान क्रिया को 'ज्ञप्ति क्रिया' भी कहा जाता है और क्रोधादि क्रिया को 'करोति क्रिया' भी कहा जाता है। करने रूप क्रिया में जानने रूप क्रिया प्रतिभासित नहीं होती और जानने रूप क्रिया में करने रूप क्रिया प्रतिभासित नहीं होती। इसलिये ज्ञप्ति क्रिया और करोति क्रिया दोनों भिन्न २ हैं। ज्ञप्तिक्रिया को सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक का सम्यक्चारित्र भी कहा जाता है। यही "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" है।

पांच व्रतों का फल

हिंसात्याग, झूठत्याग, चोरीत्याग, मैथुनत्याग और परिग्रहत्याग का फल मोक्ष तो दूर ही रहो। एक प्रकार से तो इनका फल पुण्यबंध पूर्वक स्वर्ग है और एक प्रकार से इनका फल पाप बंध पूर्वक नरक-निगोद भी है। यह एक नई बात हमारे मुख से सुनकर आपको आश्चर्य तो होगा पर भाई यह हमारी बनाई हुई बात नहीं है। हमने आगम को बहुत परिश्रम से अभ्यास किया है। यह बात एक बड़े सामर्थ्यशाली, लोकप्रसिद्ध, श्री समयसार प्रवचनसार-पंचास्तिकाय जैसे परमागम के संस्कृत टीकाकार, महान् पुरुष, अध्यात्म के शिरोमणि, महाराज श्री अमृतचन्द्र आचार्यदेव ने अपने श्री तत्त्वार्थसार शास्त्र अधिकार में इन ही पांच व्रतों का फल पुण्यास्रव और पापास्रव के रूप में दिया है और उसकी हेतुपूर्वक सिद्धि भी की है। हम उस सारे प्रकरण को टीका सहित लिखकर यहां उपस्थित करते हैं। आशा है आपको बहुत रुचिकर होगा।

५ व्रतों का फल 'पुण्यास्रव'

हिंसानृतचुराब्रह्मसङ्गसंन्यासलक्षणम् ।
व्रतं पुण्यास्रवोत्थानं भावेनेति प्रपञ्चितम् ॥

५ व्रतों का फल 'पापास्रव'

हिंसानृतचुराब्रह्मसङ्गमन्यासलक्षणम् ।
चिन्त्य पापास्रवोत्थान भावेन स्वयमव्रतम् ॥१०२॥

अन्वय —हिंसानृतचुराब्रह्मसङ्गन्यासलक्षण भावेन प्रभवितं पुण्यास्रवोत्थान इति व्रत ॥१०१॥ हिंसानृतचुराब्रह्मसङ्गन्यासलक्षण भावेन चिन्त्य पापास्रवोत्थान । स्वय अव्रत ॥१०२॥

सूत्रार्थ—हिंसात्याग, झूठत्याग, चोरीत्याग, मैथुनत्याग और परिग्रहत्याग है लक्षण जिसका वह शुभ भाव से विचारा हुआ पुण्यास्रव का उत्पादक है । सभी व्रत है ॥१०१॥ और हिंसात्याग, झूठत्याग, चोरीत्याग, मैथुनत्याग, परिग्रहत्याग है लक्षण जिस का वह अशुभ भाव से विचारा हुआ पापास्रव का उत्पादक है और स्वय अव्रत हो जाता है ॥१०२॥

भावार्थ—सारा जगत द्रव्यहिंसा, द्रव्यझूठ, द्रव्यचोरी, द्रव्यमैथुन और द्रव्य परिग्रह को तो अव्रत समझता है और द्रव्यअहिंसा, द्रव्यसत्य, द्रव्यअचौर्य, द्रव्यब्रह्म और द्रव्यपरिग्रह त्याग को व्रत समझता है किन्तु इसमे सोलह आने की बड़ी भारी भूल है । ये द्रव्यरूप क्रिया तो परवस्तु की क्रिया है । स्वतन्त्र है । इनसे पुण्य पाप या धर्म नहीं है । किन्तु असली बात यह है कि उनमे जीव का भाव जैसा काय करता है तदनुसार उन पर आरोप कर देते हैं । यदि जीव हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह की अशुभभाव प्रवृत्ति को छोड़कर अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्म और परिग्रह त्याग की प्रवृत्ति शुभ भाव पूर्वक करता है तब इनको व्यवहार से व्रत कहते हैं और इसका फल पुण्यप्रकृति का आस्रव है और उनके फलस्वरूप जीव को सातावेदनीय सबधि सुख मिलता है । (२) यदि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह को त्याग करके अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्म और परिग्रहत्याग की प्रवृत्ति खोटे भावों के विचार पूर्वक अर्थात् अशुभ भावों से की जाती है तो इसका फल पाप प्रकृति का बन्ध

है। उसका फल असाता सबन्धी दुःख है और फिर इनके त्याग को दत नहीं किन्तु अव्रतदशा हो जाती है। बहुत जीव कई बार माया से दूसरे को अपना विश्वास दिखाने के लिये अहिंसा करते दीखते हैं, सत्य बोलते दीखते हैं, कई बार लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिये ऐसा करते हैं, कई बार अपनी पूजा प्रतिष्ठा मान आदि अनेक दुष्भावों सहित अहिंसा सत्य आदिक को करते हैं तो आचार्य महाराज कहते हैं कि ऐसी दशा में हिंसा आदि का त्याग भी अव्रत है। पाप बंध का कारण है और उसका फल दुःख है। अब इसी को स्पष्ट करने के लिये वस्तु स्वभाव का नियम बताते हैं।

हेतुकार्यविशेषाभ्यां विशेषः पुण्यपापयोः ।
हेतू शुभाशुभौ भावौ कार्ये चैव सुखासुखे ॥१०३॥

अन्वय—हेतुकार्यविशेषाभ्यां पुण्यपापयोः विशेषः (अस्ति)। हेतू शुभाशुभौ भावौ एव (स्तः) च कार्ये सुखासुखे (स्तः)।

सूत्रार्थ—हेतु (कारण) और कार्य (फल) की विशेषता से पुण्य और पाप में विशेषता (अन्तर) है। हेतु शुभ अशुभ भाव हैं और कार्य सुख और दुःख हैं।

भावार्थ—आचार्य महाराज नियम बताते हैं कि पुण्य का बन्ध कब होता है तो कहते हैं कि द्रव्य अहिंसा, द्रव्यसत्य आदि से नहीं होता। वे पुण्य के कारण नहीं हैं किन्तु पुण्य का कारण तो शुभ भाव है ऐसा वस्तु का नियम है। इसी प्रकार पाप का बन्ध कब होता है तो कहते हैं कि अशुभ भाव से होता है चाहे बाहर में द्रव्य अहिंसा और द्रव्य सत्य आदि ही क्यों न कर रहा हो। अर्थात् पुण्य पाप के कारण क्रमशः शुभ अशुभ भाव हैं। द्रव्य त्याग नहीं। अब फल का नियम बताते हैं कि पुण्य का फल सांसारिक सुख ही है और पाप का फल सांसारिक दुःख ही है। फल को कार्य कहते हैं अर्थात् पुण्य पाप के कार्य

में इतनी विशेषता है कि पुण्य का कार्य साता रूप सुख ही है। पाप का कार्य असाता रूप दुःख ही है।

अब कहते हैं कि व्यवहार दृष्टि से (संसार दृष्टि से) अहिंसा आदि में प्रवृत्ति शुभ भाव है। उससे पुण्य बन्ध है। उसका फल सुख है। हिंसादि से प्रवृत्ति या बुरे भावों से अहिंसादि में प्रवृत्ति अशुभ भाव है। उससे पाप बन्ध है। उसका फल दुःख है। इस प्रकार ये दोनों पुण्यपाप तत्त्व हैं। संसार तत्त्व हैं। पर निश्चय का (अर्थात् मोक्ष का) नियम और है—वह बताते हैं—

संसारकारणत्वस्य द्वयोरप्यविशेषत ।
न नाम निश्चये अस्ति विशेष पुण्यपापयो ॥१०४॥

अन्वय—निश्चये द्वयो अपि पुण्यपापयो संसारकारणत्वस्य अविशेषत विशेष नाम न अस्ति।

सूत्रार्थ—निश्चय में दोनों ही पुण्य पापों में संसारकारणपने की विशेषता न होने से विशेषता (अन्तर) नाम मात्र को भी नहीं है।

भावार्थ—इसमें यह बताया है कि पांच पापरूप प्रवृत्ति करो या पचव्रत रूप प्रवृत्ति करो दोनों पुण्यपाप से आस्रव हैं, बंध हैं, और उस का फल संसार है। इसमें यह सिद्ध किया है कि पुण्य से चाहे वह मिथ्यादृष्टि का पुण्य हो या सम्यग्दृष्टि का—उसका फल संसार ही है। इस अपेक्षा इन दोनों में रचमात्र भी अन्तर नहीं है। हिंसा अहिंसा, झूठ-सत्य-आदि की सब प्रवृत्ति छोड़कर जो आत्मा का निवृत्ति रूप परिणाम है। ज्ञानदर्शनरूप परिणमन है—बस वह निश्चय में व्रत है। उसी को असल में चारित्र कहते हैं। वह ही मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग में उसी का ग्रहण है। पुण्य अच्छा है—पाप बुरा है, ऐसी जिसकी श्रद्धा है वह अनन्तसंसारी है। शुद्ध

भाव सच्चा है। अशुद्ध भाव बुरा है ऐसी जिसकी श्रद्धा है वह निकट भव्य है। मोक्षगामी है। श्री प्रवचनसार सूत्र ७७ में कहा है कि जो पुण्य पाप में अन्तर मानता है वह मोह से व्याप्त है और अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है। मोहक्षोभरहित आत्मपरिणाम निश्चय से धर्म का लक्षण है। वह मोक्ष का कारण है।

इतीहास्रवतत्त्वं य श्रद्धत्ते वेत्त्युपेक्षते ।
शेषतत्त्वैः समं षड्भिः स हि निर्वाणभाग्भवेत् ॥१०५॥

अन्वय—इह य षड्भिः शेषतत्त्वैः सम इति आस्रवतत्त्वं श्रद्धत्ते वेत्ति, उपेक्षते, स हि निर्वाणभाक् भवेत् ।

सूत्रार्थ—यहां (मोक्षमार्ग में) जो कोई भी, शेष छः तत्त्वों के साथ पूर्वोक्त अनुसार आस्रव तत्त्व को श्रद्धान करता है, जानता है, उपेक्षा करता है (मध्यस्थ होता है) वह निश्चय से मोक्ष का पाने वाला होता है।

भावार्थ—इस सूत्र में आचार्य महाराज का ऐसा भाव है कि उपर्युक्त वस्तु नियमानुसार जो पदार्थ का श्रद्धान करता है वह तो मोक्ष को पाता है किन्तु जो द्रव्य क्रियाओं से ही पुण्य पाप समझता है या प्रवृत्ति रूप शुभ भाव से पुण्य बंध को बजाये मोक्ष समझता है उसकी तो अभी तत्त्व में ही भूल है। तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन ही नहीं है। चारित्र या मोक्ष का तो अवकाश ही नहीं। उपर्युक्त से यह सिद्धांत सिद्ध हुआ—

(१) द्रव्यरूप हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह या द्रव्यरूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्म, अपरिग्रह तो स्वतन्त्र परद्रव्य की क्रियायें हैं। उन में पुण्य पाप या धर्म नहीं है।

(२) हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह में या अहिंसा सत्य अचौर्य, ब्रह्म या अपरिग्रह में जो जीव का अशुभ भाव कार्य करता है वह पाप

तत्व या आस्रव है। उससे पापकर्म बंधता है। उसका फल असाता रूप दुःख है।

(३) अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्म, अपरिग्रह में जो जीव का शुभ भाव कार्य करता है वह पुण्य भाव या पुण्य तत्व या व्यवहार व्रत या व्यवहार धर्म है। उससे पुण्य कर्म बन्धता है। उसका फल साता रूप सुख है।

(४) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह से निवृत्तिरूप जो मोहक्षोभ रहित आत्मा का आत्मस्थिरता रूप शुद्ध वीतराग भाव है वह निश्चय से धर्म है अर्थात् असली धर्म या चारित्र या निश्चयव्रत है। उसका फल अतीन्द्रिय सुख रूप मोक्ष है। इस प्रकार तत्व की श्रद्धा सम्यग्दृष्टि को ही होती है। मिथ्यादृष्टि इसमें कहीं न कहीं भूल ही करता है। यही इस सम्पूर्ण शास्त्र का तत्व है। वीतरागता इसका निष्कर्ष है। वही वास्तव में धर्म है।

वीतराग धर्म की जय हो !
वीतरागी सन्तों की जय हो !!
वीतरागी धर्म का दिखलाने वाले सद्गुरुदेव की जय हो !!!

सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है–मिथ्यादर्शन संसार का मूल है।

सम्यग्दर्शन अलौकिक और अपूर्व वस्तु है। सिद्ध भगवान् जैसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद सम्यग्दृष्टि ने अपने आत्मा में चख लिया है। एक सैकण्ड में सम्यग्दर्शन में अनन्त भव का नाश कर देने की ताकत है। सम्यग्दर्शन होते ही जीव निःशंक हो जाता है कि अब मेरे अनन्त भव का अभाव हो गया। अब मैं साधक हो गया। अल्प काल में ही मेरी मुक्ति होगी।। समकिती को अपने आप अपना निर्णय

होता है—दूसरे को पूछना नहीं पड़ता। जीव ने संसार परिभ्रमण में शुभरागरूप व्रत-तप त्याग अनन्त बार किये लेकिन सम्यग्दर्शन कभी प्रगट नहीं किया और सम्यग्दर्शन के बिना कभी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र भी मिथ्या ही होता है। इसलिये सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल है। ऐसा जानकर पहले सम्यग्दर्शन का प्रयत्न करना चाहिये। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना जन्मादि दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती।

द्रव्यदृष्टि में तो त्रिकाल मुक्ति है, उस में भव नहीं है। द्रव्यदृष्टि कहो या आत्मस्वरूप की पहचान कहो, एक ही बात है। इस तरह सम्यग्दृष्टि परमार्थदृष्टि, वस्तुदृष्टि, स्वभावदृष्टि, यथार्थदृष्टि, भूतार्थदृष्टि ये सब एकार्थ वाचक हैं।

जिन जीवों को द्रव्यदृष्टि नहीं होती, उन्हें विपरीत दृष्टि होती है। मिथ्यादृष्टि, व्यवहारदृष्टि, अयथार्थदृष्टि, झूठीदृष्टि, पर्यायदृष्टि, विकारदृष्टि, अभूतार्थदृष्टि ये सब एकार्थ वाचक शब्द हैं। यह विपरीत दृष्टि एक समय में अखण्ड परिपूर्ण स्वभाव को नहीं मानती। अर्थात् इस दृष्टि में अखण्ड परिपूर्ण वस्तु को न मानने की अनन्त विपरीत सामर्थ्य भरी हुई है। पूर्ण स्वभाव का निरादर करने वाली दृष्टि अनन्त संसार का कारण है। और ऐसी दृष्टि एक समय में महा पाप का कारण है। हिंसा, चोरी, झूठ, शिकारादि सात व्यसनों के पापों से भी बढ़कर अनन्तगुणा महापाप यह दृष्टि है। पांच पाप से तो नरक ही होता है किन्तु इस दृष्टि का फल निगोद अर्थात् स्वभाव की पूर्ण विपरीतता है। द्रव्यदृष्टि का पुरुषार्थ करो।

क्रिया

क्रिया का कितना प्रकार है और इसमें कौनसी क्रिया के द्वारा धर्म होता है—इसके बारे में जीव को भली भांति समझ लेना चाहिये कि चेतन और जड़ पदार्थ की क्रिया भिन्न २ है। चेतन की

में होती है और जड़ की क्रिया जड़ में होती है। चेतन की क्रिया जड़ नहीं करता और जड़ की क्रिया चेतन नहीं करता। क्रिया के तीन प्रकार हैं—

(१) धर्म की क्रिया (२) विकार की क्रिया और (३) जड़ की क्रिया।

(१) आत्मा का ज्ञान आनन्द स्वभाव है, जो जड़ से और रागादि से पृथक है। ऐसे स्वभाव में आत्मसुख होकर जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप क्रिया होती है—वह धर्म की क्रिया है। यही क्रिया मोक्ष का कारण है।

(२) आत्मा अपने स्वभाव से बहिर्मुख हो करके राग-द्वेष मोह रूप जो भाव करता है—वह विकार की क्रिया है और यह क्रिया संसार का कारण है।

(३) आत्मा से भिन्न देहादिक की जो क्रिया है— यह सब जड़ की क्रिया है। उस जड़ की क्रिया से आत्मा को न तो धर्म होता है न अधर्म क्योंकि उस का कर्ता आत्मा नहीं है। पुद्गल है।

इस प्रकार तीनों क्रिया का भिन्न २ स्वरूप समझना चाहिये।

आत्मा की क्रिया

आत्मा केवल तीन भाव कर सकता है। (१) अशुभ भाव (२) शुभ भाव (३) शुद्ध भाव।

(१) मिथ्यात्व हिंसादि का भाव अशुभ भाव है। पाप तत्व है। उस का फल असाता सम्बन्धी दुःख है।

(२) दया-पूजा आदि का भाव शुभ भाव है। पुण्य तत्व है। उसका फल साता सम्बन्धी सुखाभास है।

(३) वीतरागता आत्मा का शुद्ध भाव है। यही सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र है। धर्म रूप है। इसका फल अतीन्द्रिय सुख रूप मोक्ष है। और

कोई चौथी क्रिया आत्मा की नहीं है। अनन्त काल से आत्मा ने और कुछ किया हो नहीं है और न कर ही सकता है। पर वस्तु के कर्ता भोगतापने का मिथ्या अभिमान (अज्ञान भाव) अज्ञानी किया करता है।

राग की उत्पत्ति–नाश का नियम

पर्याय में जो अशुद्धता है, वह पर्याय की वर्तमान योग्यता है। ज्ञानघन स्वभावी, अरूपी आत्मा, जो अन्तरग कारण है, उसमें से तो–चाहे कैसा भी बाह्य निमित्त हो, चाहे कैसा भी संयोग है–तो भी ज्ञान और वीतरागता का ही प्रादुर्भाव होता है। इतना होने पर भी पर्याय में जो विकार या अशुद्धता है—वह पर्याय के अन्तरग कारण से है। विकार का अन्तरग कारण एक समय मात्र पर्याय है इसलिये विकार रूपी कार्य भी एक समय मात्र अवस्थिति का है। पहले समय का विकार दूसरे समय में निवृत्त हो जाता है। रागादि विकार रूप अशुद्ध अवस्था पर्याय के अन्तरग कारण से है। रागादि का अन्तरग कारण द्रव्य नहीं, बल्कि अवस्था (पर्याय) है। अर्थात् द्रव्य के मूल स्वभाव में रागादिक नहीं इसलिये आत्मद्रव्य रागादि का कारण नहीं है। तथा राग निमित्त से भी नहीं होता क्योंकि वह पर द्रव्य है। राग सदा एक समय की पर्याय की स्वतन्त्र योग्यता से होता है–यह खास बात बराबर समझ लेनी चाहिये। दूसरा सार यह है कि राग का कारण त्रिकाली द्रव्य या निमित्त नहीं किन्तु स्वयं उस समय की पर्याय है। द्रव्यस्वभाव के अवलम्बन से उसका नाश होता है निमित्त के अभाव से नहीं। निमित्त का अभाव तो स्वयं वस्तु स्वभाव के नियमानुसार होता ही है पर उसके अभाव के कारण राग मिटा हो–यह बात नहीं है। उस राग का तो ज्ञानी ने द्रव्यस्वभाव के अवलम्बन के पुरुषार्थ से नाश किया है। यही सच्ची दृष्टि है। राग परद्रव्य (निमित्त) में जुड़ने से होता है यह केवल राग को विभावपना सिद्ध करने के लिये कहा जाता

में उसकी उत्पत्ति भत उस समय की पर्याय की योग्यता है और माप में द्रव्य स्वभाव का अवलम्बन है।

निमित्त उपादान

(१) निमित्त उपादान को जान लेना चाहिये किन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि निमित्त के कारण उपादान में कोई कार्य होता है अथवा निमित्त उपादान का कोई काय कर सकता है।

(२) मात्र उपादान से ही काय होता है, निमित्त कुछ नहीं करता इस लिये निमित्त कुछ ह ही नहीं—यह भी नहीं मानना चाहिये।

(३) निमित्त को जानना तो चाहिये किन्तु यह उपादान से भिन्न पदार्थ है इसलिये वह उपादान में किसी भी प्रकार की सहायता अथवा असर नहीं कर सकता, इस प्रकार समझना सो सम्यग्ज्ञान है। यदि निमित्त की उपस्थिति के कारण काय का होना माने तो वह भी मिथ्या ज्ञान है।

(४) कहीं पर भी अंतरंग कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है। (श्री प्रवचनसार सूत्र ९५ टीका)।

वचनामृत

(१) अपना शुद्धस्वभाव इष्ट, विकारी अवस्था अनिष्ट, परवस्तु मात्र ज्ञेय यह मानना–यह जानना–यह साधक दशा है। परवस्तु जीव को इष्ट या अनिष्ट है, ऐसा मानना मिथ्याभाव है, महाभूल है, महापाप है।

(२) सिद्ध और निगोद ही मुख्य गति है। शुद्ध निश्चय गति सिद्ध है। और अशुद्ध निश्चय गति निगोद है, बीच की चारों गतियां व्यवहार हैं। उनका काल अल्प है।

(३) चैतन्य के उपयोग को जब 'पर' पदार्थ की तरफ लक्ष्य रख कर परभाव में दृढ़ कर लेता है, तब यही संसार कहलाता है और जब 'स्व' की तरफ लक्ष्य करके उपयोग को स्व में दृढ़ करता है तब यही मोक्ष कहलाता है। उपयोग पर तरफ का होने से 'अशुद्धोपयोग' कहा जाता है और स्वतरफ का उपयोग 'शुद्धोपयोग' कहलाता है।

(४) कैसे ही तुच्छ विषय में प्रवेश क्यों न हो, फिर भी उज्ज्वल आत्माओं की स्वतः प्रवृत्ति वैराग्य की ओर जाने में ही होती है।

(५) जैसे किसी म्लेच्छ को मांस छुड़ाने का उपदेश देने के लिये म्लेच्छ भाषा का भी प्रयोग करना पड़ता है, किन्तु उससे ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं हो जाता, उसी प्रकार सम्पूर्ण राग छुड़ाने के लिये उसे अशुभ राग से हटाकर देव-गुरु-धर्म के प्रति शुभ राग करने को कहा जाता है। वहां राग कराने का हेतु नहीं है किन्तु जितना राग कम हुआ-उतना ही प्रयोजन है। राग रहे यह प्रयोजन नहीं है। सब जैन शास्त्रों का सार राग को कम करने का है।

(पीछे पढ़िये)

श्रीमद् राजचन्द्र जी

यम नियम संयम आप कियो,
पुनि त्याग विराग अथाह लह्यो,
वनवास रह्यो मुख मौन ग्रह्यो,
दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो,
मत मंडन खण्डन भेद किये,
वहु साधन वार अनंत कियो,
तदपि कछू हाथ अभी न पर्यो
अब क्यों न विचारत है मन में,
कछु और रहा उन साधन से—
बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे
मुख आगल है कह बात करे।

श्रीमद् राजचन्द्र जी

जो जान्यो निज रूप को, तब जान्यो सब लोक।
नहि जान्यो निज रूप को, सब जान्यो सो फोक (व्यर्थ)॥
है व्यवहार से देव जिन निश्चय से है आप।
इसी वचन से समझ ले, जिन प्रवचन की छाप॥

मुमुक्षु सेवक—सरनाराम जैन
१—५—१९५९ — घसा बाजार, सहारनपुर, यू पी